Volume 4, Issue 2-4. April-December 2018 ISSN : 2395-7468

THE Equanimist

A peer reviewed journal

Volume Editor

Dr. Nisheeth Rai

The Equanimist

… A peer reviewed journal

Chief Editorial Board

Dr. Manoj.Kr.Rai (Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Dr.Virendra.P.Yadav (Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Dr. Nisheeth Rai (Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Dr. Roopesh.K.Singh(Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Dr. Ravi S. Singh (Post Doctoral Fellow. Delhi University)

Editorial Board

Prof. S. N. Chaudhary (Barkatullah University, Bhopal)
Prof. R. N. Lohkar (University of Allahabad)
Prof. U.S. Rai (University of Allahabad)
Prof. D.P.Singh (TISS,Mumbai)
Prof. V.C.Pande. (University of Allahabad)
Prof. Anand Kumar (J.N.U.)
Prof. Nisha Srivastava (University of Allahabad)
Prof. Siddarth Singh (Banaras Hindu University)
Prof. Anurag Dave (Banaras Hindu University)
Dr. H. S. Verma (Lucknow)
Dr. Vijay Kumar (An.S.I. Jagdalpur)
Mr. Rajat Rai (State Correspondent, U.P. India Today Group)
Dr. Pradeep Kr. Singh (University of Allahabad)
Dr. Shailendra.K.Mishra (University of Allahabad)
Dr. Ehasan Hasan (Banaras Hindu University)
Mr. Dheerendra Rai (Banaras Hindu University)
Mr. Ajay Kumar Singh (Jammu University)

Assistant Editorial Board

Shiv Kumar (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Abhisekh Tripathi (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Shiv Gopal (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Shreekant Jaiswal (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Jitendra (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Vijay.K. Kanaujiya (Res. Sch. M.G.A.H.V.)

Managerial Board

Mr. K.K.Tripathi (Managing Editor) (M.G.A.H.V.)
Mr. Uma Shankar (M.G.A.H.V.)
Mr. Rajesh Agarkar (M.G.A.H.V.)
Mr. Manoj Kumar (M.G.A.H.V.)
Mr. Arvind Kumar (M.G.A.H.V.)

The Equanimist

Volume 4, Issue 2-4. Apr-Dec 2018

S.NO.	Content	Pg. No.
	Research Articles	
1.	गंगा प्रदूषण एवं जन-भागीदारी का समाज कार्य अध्ययन **अभिषेक कुमार राय**	125-137
2.	फिल्मांकन के संदर्भ में अंतर-प्रतीकात्माक अनुवाद **आकांक्षा मोहन**	138-142
3.	भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकृत संस्कृति का प्रभाव **कुलदीप कुमार पांडेय**	143-147
4.	बैगा जनजातीय में परंपरागत चिकित्सा पद्धति (जड़ी-बूटियों) का अध्ययन *(अनूपपुर जिला, मध्य-प्रदेश)* **उमेश कुमार**	148-159
5.	वंचित स्त्रियों का संसार- 'लालटेन बाज़ार' **अनुराधा**	160-168
6.	ग्रामीण महिला सशक्तिकरण एवं मनरेगा : एक विवेचना **सुनील कुमार भाष्कर**	169-173
7.	ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयंसहायता समूह की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण **सुनीता चौहान**	174-182
8.	विद्यानिवास मिश्र के मूल्य-बोध का समकालीन संदर्भ *('तुम चंदन हम पानी' के विशेष संदर्भ में)* **रोशन कुमार प्रसाद**	183-190
9.	स्वतंत्रता पूर्व हिंदी आलोचना में रीतिकाल संबंधी विमर्श **शुभम सिंह**	191-197
10.	खादी की अवधारणा एवं आवश्यकता **पंकज कुमार सिंह**	198-205
11.	American Buddhist Women Activists : Spirituality and Social Action in Tandem **Siddharth Singh**	206-216
12.	Gujarati Siddisthroughthe Ages **Manish Karmwar**	217-232

गंगा प्रदूषण एवं जन-भागीदारी का समाज कार्य अध्ययन

अभिषेक कुमार राय[1]

सारांश

भा*रत में नदियों के प्रदूषण से पारिस्थितिकीय तंत्र में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए समाज को चाहिए कि नदियों कि महत्ता को समझे और उनके मूल स्वरूप को बनाए रखने का प्रयत्न करे ताकि धरती पर जीवन अपने विविध रूपों में खिल-खिलाता रहे। जन-भागीदारी का संबंध गंगा स्वच्छता के लिए सहभागिता का विकास करना व गंगा प्रदूषण के अनिवार्य भागीदारो की पहचान करना है। इसके साथ ही गंगा प्रदूषण की जगह उनका स्वच्छ गंगा निर्माण में सहयोग प्राप्त करना भी है क्योंकि जो गंगा से जुड़ा है वो गंगा को भली-भांति समझता है और गंगा प्रदूषण को दूर करने में अपना योगदान भी कर सकता है। इसलिए जन-भागीदारी की बृहद संभावना नजर आ रही है जिसका उपयोग गंगा स्वच्छता में लिया जा सकता है।*

विषय संकेत : गंगा प्रदूषण, जन-भागीदारी, समाज कार्य

भूमिका-

भारत में औद्योगीकरण एवं विकास की प्रचलित अवधारणा ने पर्यावरण को जो नुकसान पहुंचाया है वह मानव के लिए ही नहीं वरन प्रकृति के लिए भी घातक सिद्ध हो रही है। असल में मानव की स्वार्थी प्रवृत्ति और विलगाव इस कदर बढ़ रहा है कि वह गंगा समेत अन्य जीवनदायी नदियों के मूल स्वरूप से भी खिलवाड़ करने से नहीं चूक रहा है और नदियां प्रदूषित होती जा रही हैं। यदि यही हाल रहा तो नदियों के प्रदूषण का परिणाम मानव के साथ अन्य जीव प्रजातियों को भी भोगना होगा जिससे पारिस्थितिकीय तंत्र में असंतुलन उत्पन्न होगा। ऐसी स्थिति से बचने के लिए समाज को चाहिए कि नदियों कि महत्ता को समझे और उनके मूल स्वरूप को बनाए रखने का प्रयत्न करे ताकि धरती पर जीवन अपने विविध रूपों में खिल-खिलाता रहे। आज हम सभी को संकल्प लेने की अवश्यकता है कि हम नदियों के जीवनदायी स्वरूप को स्वच्छ व प्रवाहमान बनाए रखें। भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण नदी गंगा जो भारत व बांग्लादेश में मिलकर 2525 किमी. की दूरी तय करती हुई उत्तराखंड में हिमालय से लेकर बंगाल की खाड़ी के सुंदरवन तक विशाल भू-भाग को सींचती हैं, देश की प्राकृतिक संपदा ही नहीं, जन-जन की भावनात्मक आस्था का आधार भी हैं। गंगा 2017 किमी. भारत में तथा उसके बाद बांग्लादेश के साथ दस लाख वर्ग किमी. क्षेत्रफल के अति विशाल उपजाऊ मैदान की रचना करती है। सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण गंगा का यह यह मैदान अपनी घनी जनसंख्या के कारण भी जाना जाता हैं। सौ फीट की अधिकतम गहराई वाली यह नदी भारत में पवित्र मानी जाती है तथा इसकी उपासना माँ और देवी के रूप में की जाती है। भारतीय

[1] पी-एच.डी. शोधार्थी, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र).
ई-मेल : abhishekkumarrai2@gmail.com

पुराण और साहित्य में अपने सौंदर्य और महत्त्व के कारण वंदित गंगा के विदेशी साहित्य में भी प्रशंसा व भावुकता पूर्ण वर्णन किए गए हैं। (राधाकांत, 2014)

यह नदी जैव-विविधता का अद्भुत भंडार है। इस नदी में मीठे पानी वाली दुर्लभ डाल्फिन भी पाए जाते हैं। यह कृषि, पर्यटन, साहसिक खेलों व उद्योगों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है तथा अपने तट पर बसे शहरों की जलापूर्ति भी करती हैं। इसके तट पर विकसित धार्मिक स्थल और तीर्थ भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विशेष अंग हैं। इसके ऊपर बने बांध, पुल, नदी परियोजनाएं भारत की बिजली, पानी, कृषि व यातायात से संबन्धित जरूरतों को पूरा करती हैं। गंगा को नवंबर 2008 में भारत सरकार द्वारा इसे राष्ट्रीय नदी घोषित किया गया तथा इलाहाबाद से हल्दिया के बीच 1600 किमी. जल मार्ग को राष्ट्रीय जल मार्ग घोषित किया गया है। गंगा नदी विश्व भर में अपनी शुद्धीकरण क्षमता के कारण जानी जाती है। लंबे समय से प्रचलित इसकी शुद्धीकरण की मान्यता का वैज्ञानिक आधार भी है। वैज्ञानिक मानते हैं कि इस नदी के जल में बैक्टीरियोफेज नामक विषाणु होते हैं, जो जीवाणुओं व अन्य हानिकारक सूक्ष्म जीवों को जीवित नहीं रहने देते हैं। नदी के जल में प्राणवायु (ऑक्सीजन) की मात्रा बनाए रखने की असाधारण क्षमता है किंतु इसका कारण अभी अज्ञात है। परंतु गंगा तट पर बसे घने नगरों, औद्योगिक कारखानों के नालों की गंदगी सीधे गंगा नदी में मिलने से गंगा का प्रदूषण पिछले कई सालों से भारत सरकार व आम जनता की चिंता का विषय बना हुआ है। मनुष्य अपशिष्ट कचरे व औद्योगिक प्लास्टिक व हानिकारक केमिकल की बहुतायता ने गंगा जल को बहुत प्रदूषित किया है। वैज्ञानिक जांच के अनुसार गंगा का बायोलॉजिकल ऑक्सीजन स्तर तीन डिग्री सामान्य स्तर से बढ़कर छः डिग्री हो चुका है । गंगा में दो करोड़ नब्बे लाख लीटर प्रदूषित कचरा प्रतिदिन गिर रहा है। *विश्व बैंक रिपोर्ट के अनुसार उत्तर-प्रदेश की बारह प्रतिशत बीमारियों की वजह प्रदूषित गंगा जल है।* यह घोर चिंतनीय है कि गंगा जल न पीने के योग्य रहा न स्नान के योग्य रहा और न ही सिंचाई के योग्य। गंगा में बढ़ते प्रदूषण पर नियंत्रण पाने के लिए कई सरकारी कार्यक्रम चलाये गए लेकिन वे सभी असफल रहे। वर्तमान में गंगा के अस्तित्त्व पर संकट के बादल छाए हुए हैं। इसे दूर करना नितांत आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है जिससे कि जन-जीवन की पूर्वर्ती दशा को बहाल किया जा सके। क्योकि गंगा के पराभव का अर्थ होगा, हमारी समूची सभ्यता का पराभव।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान के एचओडी एवं प्रकृति संरक्षण के लिए मशहूर डॉ. दीनानाथ शुक्ल 'दीन' (2015) बताते है कि *"गंगा मात्र नदी नहीं है बल्कि यह जीवनदायिनी भी है। सभ्यताएं इसके किनारे बसती रही हैं लेकिन आज किनारे के बजाए लोग इसके भीतर ही बसने लगे हैं। शहर में अंधाधुंध तरीके से विकास हो रहा है। पेड़ काटे जा रहे हैं। फैक्ट्रियों का कचरा नदी किनारे डंप किया जा रहा है। आज तो इसका असर दिख ही रहा है लेकिन आगे और विषम हालात बन जाएंगे।"* वहीं पर्यावरणविद अनुपम मिश्र कहते हैं कि *"हिंदुस्तान का जिस तरह का मौसम चक्र है उसमें हर नदी चाहे वो कितनी भी प्रदूषित क्यों न हो, साल में एक बार बाढ़ के वक्त खुद को फिर से साफ़ कर देती है, पर इसके बाद हम फिर से इसे गंदा कर देते है, तो हमें नदी साफ़ करने की बजाय इसे गंदा करना बंद करना होगा।" (BBC हिंदी, 2013)*

उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य गंगा प्रदूषण के साथ गंगा स्वच्छता में जन-भागीदारी का अध्ययन करना और जन-भागीदारी के अवसरों की तलाश करना प्रमुख है।

शोध प्रविधि-

प्रस्तुत शोध पत्र गुणात्मक प्रकृति पर आधारित है। जिसमें द्वितीयक स्रोत के अंतर्गत प्रकाशित रिपोर्ट, अखबार, शोध ग्रंथ, पुस्तकों एवं इंटरनेट से प्राप्त तथ्यों को एकत्र कर उनका विश्लेषण विषय वस्तु के आधार पर किया गया है। जिससे की प्रामाणिक निष्कर्ष प्राप्त हो सके।

परिणाम एवं विवेचना-

आज गंगा स्वच्छता के प्रति समाज में उदासीनता का भाव है जो गंगा के पारिस्थितिकीय, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिकता के लिए खतरा है। गंगा नदी नहीं जीवन व सभ्यता का आधार है, जिनके विलुप्त होने से जीवन ही नहीं एक समृद्ध सभ्यता का विनाश हो सकता है। इसलिए गंगा नदी की समस्या शोध पत्र का विषय है, ताकि शोध पत्र के माध्यम से इसकी समस्या से समाधान की तरफ बढ़ा जा सके। आज गंगा नदी में प्रदूषण की मात्रा बढ़ती जा रही है। यह नदी विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित पांच नदियों में गिनी जाने लगी है। गंगा नदी के जीव-जंतु एवं उसकी जैव विविधता को नदी में जैव-ऑक्सीजन, घुली ऑक्सीजन, क्लोराइड, कठोरता, तापमान, आयरन, सीसा, क्रोमियम, कोलिफार्म जैसे हानिकारक घटक तत्वों की मात्रा बढ़ने से खतरा उत्पन्न हो रहा है। गंगा का पानी नहाने, पीने एवं सिंचाई करने लायक नहीं रह गया है। गंगा में शहरों, उद्योगों एवं कारखानों के गंदे सीवेज को छोड़ा जा रहा है जिससे गंगा का पानी प्रदूषित हो रहा है। सरकार की सभी गंगा स्वच्छता की योजनाएं सफल नहीं हो पा रही है। धार्मिक कर्मकांड, शवदाह एवं पूजा पद्धति गंगा प्रदूषण को बढ़ा रही है। गंगा स्वच्छता को लेकर चलाये गए कार्यक्रमों, आंदोलनो एवं अभियानों में आमजन की सक्रिय भागीदारी की कमी से गंगा स्वच्छता में समाज अभी तक जुड़ नहीं पाया है जो चिंता का विषय है।

यहाँ गंगा प्रदूषण के वर्तमान हालात का अध्ययन "गंगा की सौगंध" कार्यक्रम ABP न्यूज़ व SIIR (Sriram Institute for Industrial Research) के संयुक्त तत्त्वाधान में पिछले 2010 से 2014 तक चलाये गए शोध के आधार पर किया गया है। जिसमे गंगा तट पर बसे बड़े शहरों में गंगा जल के सैंपल की जांच के आधार पर हानिकारक तत्त्वों की पहचान की गयी है। इसमें भारतीय पेयजल के विशिष्ट मानक SI: 10500 को मानक बना कर एक दिन में विभिन्न स्थानों से सैंपल लेकर जांच की गयी है, (ABP+SIIR, 2014) जिसके आकड़े निम्म हैं :- (जून, 2014)

- घुली ऑक्सीजन की मात्र (Dissolved Oxygen) आदर्श सीमा 5 मिलीग्राम से अधिक प्रति लीटर में कानपुर (1.4 मिलीग्राम), वाराणसी (3.9 मिलीग्राम) और पटना (3.6 मिलीग्राम) प्राप्त हुआ है।
- जैव ऑक्सीजन (Biological Oxygen Demand) आदर्श सीमा 3 मिलीग्राम से कम प्रति लीटर में कानपुर (21 मिलीग्राम), वाराणसी (15 मिलीग्राम) और पटना (12 मिलीग्राम) प्राप्त हुआ है।

एबीपी न्यूज व श्रीराम इंस्टीट्यूट फार इंडस्ट्रियल रिसर्च ने गंगा जल पर जो शोध किया उसके आंकड़े कहते है कि गंगा के पानी में बैक्टीरिया की मात्रा अत्यधिक है जो शरीर को बीमारियों का घर बना सकती है। गंगा के हर नमूनों पर 68 टेस्ट किए गए, जो मुख्य अशुद्धियाँ गंगा में मिली है वो है :-

1. **गंदलापन (Turbidity):-** सभी नमूनो में गंगा जल इस टेस्ट में फेल हुआ है। गंगा में डुबकी लगाने वाला हर शख्स इसे महसूस करता है कि गंगाजल पारदर्शी नहीं है। इस टेस्ट में कही का गंगा जल पारदर्शी नहीं मिला अर्थात गंगा में गंदलापन अधिक है।
2. **लौह तत्त्व (Iron):-** आयरन का सीधा मतलब होता है पानी का स्वाद बिगाड़ना। आयरन की शरीर को जरूरत होती है। सबसे ज्यादा जरूरत तब होती है जब महिलाएं गर्भवती होती है तब उन्हे करीब 25 मिलीग्राम हर रोज के हिसाब से आयरन अलग से दिया जाता है। लेकिन आम लोगो के लिए यह सीमा 45 मिलीग्राम प्रति दिन है। इसके बाद आयरन शरीर को नुकसान पहुंचाना शुरू कर देता है। टेस्ट में आयरन की सीमा भी उच्च पाई गई है।
3. **पानी में घुलनशील ऑक्सीजन (Dissolve Oxygen in Water):-** पानी में यह जीवन का बड़ा पैमाना है। आदर्श सीमा है 5 मिलीग्राम प्रति लीटर इससे कम ऑक्सीजन पानी की फूड चेन को खराब कर देता है। एबीपी जांच रिपोर्ट में वाराणसी में 0.8 मिलीग्राम, कानपुर में 0.7 मिलीग्राम, पटना में 3.6 मिलीग्राम पाया गया है जो डाल्फिन जैसी दुर्लभ प्रजाति के लिए हानिकारक है।
4. **बैक्टीरिया (MPN Coliform):-** मोस्ट प्रोबेबल नंबर टेस्ट वो तरीका है जिससे पानी में मौजूद बैक्टीरिया का पता लगाया जाता है कि पानी में जीवाणुओं की बस्तियां पनप रही है। पीने के पानी में 100 मिलीलीटर में सिर्फ 10 बैक्टीरिया को अनुमति दी गई है पर गंगाजल के ऋषिकेश में यह 7000, हरिद्वार में 14000, कानपुर में 280000, इलाहाबाद में 28000, वाराणसी में 35000, पटना में 140000 जीवाणु की मौजूदगी पाई गई है। टेस्ट में हर जगह फ़िकल कोलिफार्म मिला है जिससे कई तरह के इन्फेक्सन जैसे- कानों का, टाइफाइड, वाइरल फीवर, हैजा गैस्ट्रोइंटाइटिस, हिपेटाइटिस ए प्रमुख है।
5. **ए. कोली बैक्टीरिया (E Coli Bacteria):-** पानी में ई कोली का होना ही पानी को पीने या खेती के लिए फेल करने के लिए काफी है। ई कोली टेस्ट में गंगा जल के सभी नमूने फेल हुए है। ई कोली इन्सानों व मवेशियों के पेट में हमेशा रहता है। इसका संक्रमण ज्यादा मल या शव के जरिए होता है। इसकी 700 से अधिक तरह की प्रजातियां है कुछ प्रजातियां घातक भी होती है। इसके संक्रमण से पेट में एठन, दस्त, खूनी दस्त, हल्का बुखार, थकावट व उल्टी जैसे लक्षण पैदा होते है। जांच में शामिल कही का गंगा जल इसमें पास नहीं हुआ है।

कानपुर, उत्तर-प्रदेश -

16-17 जून 2014 कानपुर के सरसिया घाट व जाजमऊ घाट पर गंगा के पानी की जांच में निम्न तत्त्व पाए गए-

River at Kanpur (Up-Stream Sarsiya Ghat, Down Stream Jajmau Briadge) 2014

Sr. No.	Parameters	Desirable Limit	Permissible Limit	Lab Report (Up-Stream)	Lab Report (Down Stream)	Result
1.	Turbidity NTU	5 max	10 max	25	19	fail
2.	Iron (Fe) mg/1	0.3 max	1 max	1.3	1.1	fail
3.	Manganese (MN) mg/1	0.1 max	0.3 max	0.14	0.11	fail
4.	Mineral oil mg/1	0.01 max	0.03 max	12.7	16	fail
5.	MPN Coliform/100ml	10 max	10 max	150000	280000	fail
6.	E. Coli	Nil	Nil	Positive	Positive	fail
7.	Faecal Coliform/100ml	Nil	Nil	14000	22000	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

Ganga River at Kanpur

Sr. No.	Parameters	2014	2013	2012	2011	2010
1.	Drinking	fail	fail	Fail	fail	fail
2.	Bathing	fail	fail	Fail	fail	fail
3.	Agriculture	fail	fail	Fail	fail	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत:** (ABP+SIIR, 2014)

Bacteria in Ganga River at Kanpur

Sr. No.	Parameters	2014	2013	2012	2011	2010	Limit
1.	MPN Coliform/100ml	280000	90,00,00,000	54000	35,00,000	54,00,000	10
2.	E. Coli	Positive	Positive	Positive	Positive	Positive	Nil
3.	Faecal Coliform/100ml	2200	280,00,000	2200	9,00,000	35,00,000	Nil

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

कानपुर में गंगा- गंगा कानपुर में दाखिल होने से ज्यादा निकलते वक्त गंदी है। पानी में खनिज तेल मिल रहे है जो बताते हैं इंड्रस्ट्रियल या ऑटोमोबाइल उद्योग से उद्योग से निकालने वाला कचरा बिना ट्रीट किए गंगा में

डाला जा रहा है। वहीं बैक्टीरिया की तादाद भी इस दौरान काफी बढ़ी हुई मिली है। पिछले साल के मुकाबले बैक्टीरिया कम नजर आ रहे हैं पर इसकी एक वजह गंगा में पानी का अधिक होना हो सकता है। गंगा प्रदूषण पर केंद्रीय रिपोर्ट के अनुसार कानपुर में 800 चमड़ा कारख़ाना है। जहां इन कारखानों से 5 करोड़ लीटर जहरीला सीवेज निकलता है। कानपुर से करीब 50 करोड़ लीटर सीवेज निकलता है, ट्रीट क्षमता सिर्फ 21 करोड़ लीटर की है जबकि 29 करोड़ लीटर सीवेज रोज गंगा में मिला दिया जा रहा है।

इलाहाबाद, उत्तर-प्रदेश -

16-17 जून 2014 को इलाहाबाद के रसूलाबाद व संगम घाट से गंगा के पानी कि जांच में निम्न तत्त्व पाए गए -

River at Allahabad (Up-Stream Rasulabad Ghat, Down Stream Sangam) 2014

Sr. No.	Parameters	Desirable Limit	Permissible Limit	Lab Report (Up)	Lab Report (Down)	Result
1.	Turbidity NTU	5 max	10 max	30	41	fail
2.	Iron (Fe) mg/1	0.3 max	1 max	1.8	2.2	fail
3.	Mineral oil mg/1	0.01 max	0.03 max	0.5	1	fail
4.	MPN Coliform/100ml	10 max	10 max	22000	28000	fail
5.	E. Coli	Nil	Nil	Positive	Positive	fail
6.	Faecal Coliform/100ml	Nil	Nil	2800	1100	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

Ganga River at Allahabad

Sr. No.	Parameters	2014	2013	2012	2011	2010
1.	Drinking	fail	fail	fail	fail	fail
2.	Bathing	fail	fail	fail	fail	fail
3.	Agriculture	fail	fail	fail	fail	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

Bacteria in Ganga River at Allahabad

Sr. No.	Parameters	2014	2013	2012	2011	2010	Limit
1.	MPN Coliform/100ml	28000	46000	2400000	70000	54000	10

2.	E. Coli	Positive	Positive	Positive	Positive	Positive	Nil
3.	Faecal Coliform/100ml	1100	3500	1300000	54000	35000	Nil

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

इलाहाबाद में गंगा- गंगा के इलाहाबाद में आने और निकलने में ज्यादा फर्क नहीं है। पिछले साल के मुक़ाबले में इस बार इलाहाबाद की स्थिति बेहतर लग रही है। लेकिन पानी में ई कोली होने के कारण पानी पीने, नहाने लायक नहीं है। गंगा प्रदूषण पर केंद्रीय प्रदूषण बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार इलाहाबाद में गंगा का प्रवाह कम होने से यह नदी अपने पुराने तटों से दूर होती जा रही है। ठहरा पानी अपने साथ गंदगी को बहा नहीं पा रह है। यहां हर रोज 20 करोड़ लीटर गंदगी निकलती है जिसका 8.9 करोड़ लीटर ही ट्रीट हो पाता है। जबकि 11 करोड़ लीटर सीवेज गंगा में गिरा दिया जाता है।

वाराणसी, उत्तर-प्रदेश -

17-18 जून 2014 को वाराणसी के असि घाट व राजघाट से गंगा के पानी कि जांच में निम्न तत्त्व पाए गए है-

River at Varanasi (Up-Stream Assi Ghat, Down Stream Rajghat) 2014

Sr. No.	Parameters	Desirable Limit	Permissible Limit	Lab Report (Up)	Lab Report (Down)	Result
1.	Turbidity NTU	5 max	10 max	18	25	fail
2.	Iron (Fe) mg/1	0.3 max	1 max	1.7	1.3	fail
3.		0.01 max	0.03 max	7.7	10.6	fail
4.	MPN Coliform/100ml	10 max	10 max	22000	35000	fail
5.	E. Coli	Nil	Nil	Positive	Positive	fail
6.	Faecal Coliform/100ml	Nil	Nil	1400	2800	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

Ganga River at Varansi

Sr. No.	Parameters	2014	2013	2012	2011	2010
1.	Drinking	fail	fail	fail	fail	fail
2.	Bathing	fail	fail	fail	fail	fail
3.	Agriculture	fail	fail	fail	fail	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

Bacteria in Ganga River at Varanasi

Sr. No.	Parameters	2014	2013	2012	2011	2010	Limit
1.	MPN Coliform/100ml	35000	17000	54000	35000	45000	10
2.	E. Coli	Positive	Positive	Positive	Positive	Positive	Nil
3.	Faecal Coliform/100ml	2800	1400	1400	7000	22000	Nil

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

वाराणसी में गंगा- वाराणसी में गंगा जल ना आचमन के लिए उपयुक्त है ना ही डुबकी लगाने के लिए। गंगा वाराणसी में प्रवेश से ज्यादा वाराणसी से निकलते समय दूषित है। बैक्टीरिया और दूसरी अशुद्धियाँ भी वाराणसी शहर में शामिल हो रही है। बैक्टीरिया सीवर की लाइनों और शवों पर पलते है तो मिनरल आयल या खनिज तेल कारखानों के कचरे को नदी में डाले जाने की गवाही दे रहे है। वाराणसी के 84 घाटों से पूजा सामाग्री व कचरा सीधे गंगा में गिरता है। घाटों पर दुकान की पाबंदी है लेकिन दुकाने चल रही है। गंगा प्रदूषण पर केंद्रीय प्रदूषण बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार वाराणसी में हर रोज 18 करोड़ लीटर गंदगी निकलती है जिसमें से सिर्फ 14 करोड़ लीटर का ट्रीट हो पाता है। अधिकतर समय बिजली की कमी के चलते ये ट्रीट प्लांट भी बंद रहते है। हर रोज यहां से 4 करोड़ लीटर की गंदगी गंगा में डाली जा रही है।

पटना, बिहार -

River at Patna 19-20 June 2014 को जांच में पाए गए तत्त्व निम्न है-

Sr. No.	Parameters	Desirable Limit	Permissible Limit	Lab Report	Result
1.	Turbidity NTU	5 max	10 max	17	fail
2.	Iron (Fe) mg/1	0.3 max	1 max	1	Failed in desirable
3.	Mineral oil mg/1	0.01 max	0.03	4	fail
4.	MPN Coliform/100ml	10 max	10 max	5,50,000	fail
5.	E. Coli	Nil	Nil	Positive	fail
6.	Faecal Coliform/100ml	Nil	Nil	1800	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

Ganga River at Patna

Sr. No.	Paramerters	2014	2013	2012	2011	2010
1.	Drinking	fail	fail	fail	fail	fail
2.	Bathing	fail	fail	fail	fail	fail
3.	Agriculture	fail	fail	fail	fail	fail

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

Bacteria in Ganga River at Patna

Sr. No.	Parameters	2014	2013	2012	2011	2010	Limit
1.	MPN Coliform/100 ml	5,50,000	9,00,000	90,000	46,000	35000	10
2.	E. Coli	Positive	Positive	Positive	Positive	Positive	Nil
3.	Faecal Coliform/100 ml	1800	54,00	35,00	17,00	1400	Nil

(Limit as per IS: 10500:19991) **स्रोत :** (ABP+SIIR, 2014)

पटना में गंगा- पटना में गंगा का पानी बीमार करने वाला है। यहां पानी में ई कोली बैक्टीरिया है। पटना में गंगा जल की हालत पिछले वर्ष की तुलना में सुधरी है। इसके बाद भी पानी पीने लायक नहीं है। गंगा प्रदूषण पर केंद्रीय प्रदूषण बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार पटना में हर रोज 25 करोड़ लीटर गंदगी निकलती है जिसका सरकारी आंकड़ों के अनुसार 11 करोड़ लीटर गंदगी की सफाई होती है जबकि यहा केवल तीन ट्रीट प्लांट है जो ठीक से काम नहीं कर रहे है।

निष्कर्ष एवं सुझाव-

व्यक्ति व समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं। जहां समाज ने व्यक्ति को मानवीय अस्तित्त्व प्रदान किया है, वही समाज द्वारा कई प्रकार की समस्याएं भी उत्पन्न की गयी है। इन समस्याओं के समाधान हेतु कई प्रयास किये जाते है । इन्ही प्रयासों की श्रेणी में समाज कार्य एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। समाज कार्य, प्रभावपूर्ण सामाजिक क्रिया व सामाजिक अनुकूलन के मार्ग में आने वाली सामाजिक, पर्यावरणीय व जीवन सम्मत समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से कुशल प्रविधियों के माध्यम से समाधान प्रस्तुत करता है। समाज कार्य जनता में अपनी सेवाओं के माध्यम से समाज में एक चेतना का विकास करता है, जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति, समूह, समुदाय अपने विकासात्मक क्रियाकलापों के प्रति संवेदित होते है और अपना योगदान उन क्रियाकलापों में स्वतंत्र रूप से देते है। इस प्रकार से निर्मित व्यवस्था में समाजिक सहभागिता का विकास एक स्वस्थ्य लोकतन्त्र के निर्माण में सहायक होता है।

जन-भागीदारी व समाज कार्य आपस में एक दूसरे के पूरक है। समाज कार्य समाज को मजबूत करने के लिए कार्य करता है जिसमें कई उपागम सम्मिलित है जो व्यक्ति, समूह, समुदाय में अपनी सेवाएं वैयक्तिक समाज कार्य, सामूहिक समाज कार्य, सामुदायिक समाज कार्य, कल्याण प्रशासन, सामाजिक क्रिया और समाज कार्य शोध के माध्यम से देते है। जिसमें जनभागीदारी को विकसित करने, उसकी आवश्यक दशाओं के निर्माण व उसकी सहभागिता को रेखांकित करने का प्रयास व्यक्ति, समूह, समुदाय के साथ एक सामाजिक संस्था व सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में किया जाता है। समाज कार्य जिस प्रकार एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था का निर्माण करता है, उसी रूप में जन-भागीदारी लोकतंत्र में पारदर्शी प्रक्रिया के साथ, सहयोग, आपसी सीख व समझ से समाज में उत्पन्न समस्या का समाधान आपसी सहमती व अनुभव से एक सर्वमान्य निर्णय की प्रक्रिया से पूरी होती है। जिसमें सभी व्यक्तियों, समूहों, समुदायों के विचार व मूल्यों को शामिल करते हुए एक सहयोगपूर्ण वातावरण का निर्माण करते हुए आमजन की पहुंच निर्णय निर्माण की प्रक्रिया के राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था में शामिल करता है। इससे समाज कार्य प्रभावित व्यक्ति, समूह, समुदाय की क्षमता वर्धन करते हुए समाज को निर्णय लेने की दक्षता प्रदान करता है तथा उस व्यक्ति, समूह, समुदाय से निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में सहभागिता के अवसर की तलाश करने, उसमें भाग लेने व एक लोकतांत्रिक निर्णय पर पहुंचने की कल्पना करता है, जिससे की समाज में परिवर्तन, पारदर्शिता, सहभागिता, स्थानीय मूल्यों व ज्ञान,अनुभव का विकास होता रहे और उनका उपयोग एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था के निर्माण में मिलता रहे।

गंगा नदी एवं उसकी सहायक नदियों की पारिस्थितिकीय प्रवाह की धारा को सुनिश्चित किया जाय जिससे जैव विविधता एवं जीव-जन्तु का विकास सुनिश्चित हो और नदी प्रदूषण में कमी आ सके। नदी अतिक्रमण एवं नदी जल के दोहन को रोका जाय। इसके लिए गंगा की सहायक नदियों को संरक्षित, प्रदूषण मुक्त एवं स्थानीय सिंचाई, जलापूर्ति से जोड़कर गंगा के भार को कम किया जा सकता है। नदी बेसिन में होने वाले अविवेकपूर्ण भू-गर्भीय जल के दोहन पर विराम लगाया जाय और अनुशासित जल के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाय। गंगा एवं उसकी सहायक नदियों में उद्योगों, कारखानों, नगर निगमों एव नगर पालिकाओं, होटलों एवं शहरों के द्वारा निकले गंदे जल को शोधित किया जाय। पुनः परिष्कृत कर उस शोधित जल का उपयोग खेती एवं उद्योगो के लिए किया जाय। नदी में गंदे जल को छोड़ना बंद किया जाय। कारखानों, उद्योगों, होटलों को अपने परिसर में जल शोधन यंत्र लगाने का निर्देश सरकार द्वारा दिया जाय। इसके लिए उन्हे सब्सिडी, ब्याज रहित कर्ज, टैक्स जैसे विषयों में सहूलियत देकर प्रोत्साहित किया जाय। गंगा घाट के तटों पर होने वाले धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों के संचालन के लिए सरकारी-सामुदायिक-सहभागिता के आधार पर प्रबंधन, क्रियान्वयन एवं नियोजन को लागू किया जाय। इससे समाज को गंगा के साथ जोड़ने में मदद मिलेगी।

नदी प्रदूषण नियंत्रण हेतु सरकार, स्थानीय प्रशासन, स्थानीय समुदाय/हितधारक, ग्राम पंचायते, नगर पालिका, स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधि को जोड़कर हर नदी के लिए भागीदारी पूर्ण निगरानी तंत्र का विकास किया जाय एवं उन्हे नदी प्रदूषण पर कार्यवाई का वैधानिक अधिकार दिया जाय। सरकार के सभी

अभिकरणों एवं स्थानीय हितधारकों की नदी प्रदूषण को कम करने में छोटी-छोटी भूमिका का निर्धारण किया जाय। जिससे कि वे अपनी जिम्मेदारी एवं कर्तव्यों को पहचान कर नदी प्रदूषण रोकने के लिए कार्य कर सके। इसके लिए स्थानीय स्तर पर जन-भागीदारी के प्रतिरूप का विकास कर सभी वर्गों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

जन-भागीदारी के विकास के लिए वृहद एवं स्थानीय स्तर पर विकेंद्रित प्रणाली के विकास को प्रोत्साहन दिया जाय। जनमानस एवं स्थानीय हितधारकों को जोड़ने के लिए वृहद एवं स्थानीय स्तर पर जन जागरूकता अभियान चलाने की अवश्यकता है जो जनमानस एवं स्थानीय हितधारकों के अंदर जिम्मेदारी एवं कर्तव्यबोध का एहसास कराते हुए टिकाऊ व्यवस्था का निर्माण कर सके। इसमें स्थानीय हितधारकों को शुभ कार्यों में भागीदारी दर्ज करने के लिए शुभ लाभ की व्यवस्था भी सम्मिलित होनी चाहिए। गंगा क्षेत्रों में जैविक खेती के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाय। आज जैविक खेती की मांग बढ़ रही है। जैविक खेती से गंगा क्षेत्र में होने वाले रसायनिक प्रदूषण से मुक्ति मिल सकती है। जैविक खेती को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार व सामाजिक संगठनों को सब्सिडी, सलाह, सहायता एवं तकनीकी सहयोग उपलब्ध कराना चाहिए।

नदी संसाधन के दोहन से उत्पन्न बिजली एवं नहरों, बांधों के विकल्प के रूप में अक्षय ऊर्जा का दोहन कर प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम किया जा सकता है। स्थानीय तालाब, पोखर, कुंडी एवं छोटी-छोटी नदियों को संरक्षित कर सिंचाई का उपयोग किया जा सकता है जिससे नदी जल के शोषण पर रोक लग सकती है। गंगा नदी को राष्ट्रीय नदी के दर्जे के साथ देश के अन्य राष्ट्रीय चिन्हों, स्मारकों एवं प्रतीकों की भांति सम्मान, व्यवहार में अनुशासन, नियम-कानून एवं कार्य-प्रणाली का निर्धारण सरकार आमजन की सहभागिता से सुनिश्चित करे। जिससे की समाज में राष्ट्रीय नदी का स्थायी भाव पैदा हो सके।

सरकार द्वारा एक नदी नीति का निर्माण किया जान चाहिए, जिसमें कठोर कानून, समाज की नदी जल संरक्षण, निगरानी एवं उपयोग में भागीदारी का प्रावधान हो। केंद्रीय एवं राज्य स्तरीय सहयोग के अवसर की प्रधानता, नदी जल की गुणवत्ता की निगरानी तंत्र की समुचित व्यवस्था, नदी जल संसाधनो के संरचनात्मक विकास की टिकाऊँ व्यवस्था, नदी पर्यावरण प्रबंधन की व्यवस्था के साथ नदी प्रदूषण एवं नदी कानूनों को तोड़ने वालों के लिए समुचित दण्ड एवं कानूनी प्रावधान की व्यवस्था होनी चाहिए।

गंगा नदी के जल का प्राथमिकीकरण होना चाहिए जिसमें जल का प्रवाह पर्यावरण के लिए पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। दूसरी प्राथमिकता पीने के पानी के रूप में। तीसरी प्राथमिकता जीवनयापन में लगे किसानों को। चौथी विद्युत उत्पादन एवं पाँचवी प्राथमिकता उद्योगों व अन्य के लिए होना चाहिए। वर्तमान समय में विद्युत उत्पादन, सिंचाई को प्राथमिकता दी जा रही है जिससे पर्यावरणीय प्रवाह बाधित हो रहा है।

गंगा बेसिन का पूरा इलाका हिंदी भाषी है यहाँ के लोग हिंदी बेहतर ढंग से समझते एवं बोलते है। इसलिए सरकार को प्रयास करना चाहिए कि सभी रिपोर्टें, कार्यक्रम एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान के सकारात्मक परिणाम के लिए हिंदी भाषा का बेहतर ढंग से उपयोग हो। गंगा के सभी घाटों को चार भौगोलिक

भाँगों में बाट कर स्थानीय हितधारकों, संगठनों एवं प्रशासनिक अभिकरणों को साफ-सफाई की जिम्मेदारी दी जाय। समय-समय पर उसके साफ-सफाई के स्तर पर प्रेरणादायी पुरस्कारों की घोषणा कर उनके प्रयासों को सम्मान दिये जाने की व्यवस्था बनायी जाय, जिसमें पर्यावरण संरक्षण एवं नदी पर कार्यरत विषय विशेषज्ञों को आमंत्रित कर उनसे प्रेरणादायी पुरस्कारों का वितरण कराया जाय।

संदर्भ ग्रंथ -

- के. च. (2014). *गंगा बचाओ* . बेंगलूर : महामना मालवीय जी ट्रस्ट.
- भारती राधाकांत. (2014). भारत की नदियां. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.
- मिश्र अ. एवं रामेंदु प. (2013). दर दर *गंगे*. नई दिल्ली: पेंगुइन.
- सिंह राजेंद्र .(2009) .*गंगा जनादेश*. राजस्थान: तरुण भारत संघ.
- मुखर्जी राधाकमल .(2013) .*भारत की नदियां*. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.
- सत्येंद्र सिंह .(2009) .*गंगा*. राजस्थान: तरुण भारत संघ.
- सिंह स. (2009). *समाज कार्य इतिहास दर्शन और प्रणालियाँ*. लखनऊ: न्यू रायल बुक कम्पनी.
- सिंह र. (2004). *जल यात्रा*. अलवर: तरुण भारत संघ.
- सिंह र. (2007). *पानी की आवाज*. अलवर: तरुण भारत संघ.
- यामिनी र. भ. (2005). *प्रदुषण समस्या तथा निवारण*. दिल्ली: अखिल भारती.
- राठौड़ प. ए. (2007). *जल संस्कृति*. जयपुर: तरुण भारत संघ.
- राय ड. त. (2010). *मानव और पर्यावरण*. दिल्ली: आनन्द प्रकाशन.
- लोकेश स. य. (2003). *पानी की कहानी*. नईदिल्ली: मेहरा आफसेट.
- मिश्र अ. (2012). *आज भी खरे हैं तालाब*. नई दिल्ली : गांधी शांति प्रतिष्ठान.
- Research(SIIR), A. N. (2014). *Study of Water Quality of River Ganga by SIIR | ABP NEWS*. ABP News and Shriram Institute for Industrial Research(SIIR). Retrieved Fervary 01, 2018, from http://aapkablog.abplive.in/sites/all/themes/abpnewsblog/ganga-ki-saughand.pdf
- Gangwar, S. o. (2013, Number 8). Water Quality Monitoring in India: AReview. *International Journal Of Information and Computation Technology, 3*, 851-856. Retrieved Fervary 05, 2018, from htt://www.irphouse.com/ijict.htm
- CENTRAL POLLUTION CONTROL BOARD. (2015). *Water Quality of Rivers at Interstate Borders*. New Delhi: CENTRAL POLLUTION

CONTROL BOARD. Retrieved Fervary 05, 2018, from http://cpcb.nic.in/newitems.php

- International Association for Public Participation. (2015). *International Association for Public Participation (IAP2)*. Retrieved September 4, 2015, from IAP2 Core Values: http://www.iap2.org/?page=A5
- Yee D. (2010). *Stakholder Engagement and Public Participation in Enviromental Flows and River Heath Assesment* . China: Australia-China Enviromental Development Partnership.

फिल्मांकन के संदर्भ में अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद

आकांक्षा मोहन[1]

अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद में दो प्रकार की प्रतीक व्यवस्थाओं का अनुवाद होता है। यूँ तो अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद चित्रों, नटों, नृत्य, संगीत आदि के माध्यम से भी होता है परंतु यहाँ हम अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद सिनेमाई अनुवाद के विशेष संदर्भ में ले रहें हैं अर्थात इसमें किसी कहानी या उपन्यास का फिल्म या टी.वी. के दृश्य बिंबों द्वारा प्रतीकांतर किया जा सकता है। उपन्यास या साहित्य भाषिक प्रतीक व्यवस्था में होंगे तथा उस पर आधारित फिल्म भाषेत्तर प्रतीक व्यवस्था में होगी। यह अनुवाद सिद्ध करता है कि कथ्य और अभिव्यक्ति पर आधारित प्रतीक व्यवस्था की वास्तविक सत्ता उसकी प्रतीकात्मकता में होती है न कि उसके मात्र कथ्य और अभिव्यक्ति पक्ष में।

व्यापक रूप से देखें तो चित्रों को देखकर समझा हुआ अर्थ भी प्रतीकांतरण ही है, *"Intersemiotic translation involves translation between two different media for example, Form the verbal medium into the musical medium, From the verbal medium into the cinematographic medium, and so on, This later category made it possible for different sign system to be examined through the prism of translation studies."* अर्थात दो विभिन्न माध्यमों या प्रतीक व्यवस्थाओं के बीच अनुवाद को अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद कह सकते हैं। इस अनुवाद ने सिनेमा और साहित्य को नजदीक लाया है। यहाँ उल्लेखनीय है- 'अनुवाद वह रथ है जिस पर सवार होकर ज्यादा से ज्यादा दर्शकों तक पहुंचा जा सकता है।'

प्रतीकों का सहारा लेने से परंपरा को संप्रेषित करने का दायरा एकाएक काफी विकसित हो गया है। साहित्य और सिनेमा में शब्द और दृश्य अभिव्यक्ति रूप का संबंध है। इन दोनों माध्यमों का अभिव्यक्ति के स्तर पर भी आपस में रूपांतरण आरंभ हुआ। साहित्य पर आधारित चित्रकला का बहुत विकास हुआ साथ ही वह प्रशंसनीय भी रहा। आज भी उज्जैन का कालिदास समारोह इसकी मिसाल है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए शब्द एक माध्यम है तो वहीं दृश्य भाषा एक अलग माध्यम हैं। इस अनुवाद में भाव एक माध्यम से दूसरे माध्यम में अनूदित होकर नए मार्ग से अभिव्यक्त होते हैं, दृश्य माध्यम में शब्द के अनुवाद या रूपांतरण को समझने के लिए दोनों माध्यमों की संरचनात्मक प्रकृति को समझना आवश्यक होता है।

अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद के अनुवादक को अर्थात पटकथा लेखक को दोनों भाषाओं पर अच्छी पकड़ और विषय ज्ञान के साथ-साथ फिल्म संबंधी तकनीकी ज्ञान भी होना आवश्यक है। रचनात्मक कल्पना उसकी अपेक्षित आवश्यकता है। इनके अलावा उसके समक्ष सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों के अनुवाद जैसे

[1] शोध छात्रा, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
ई-मेल - akisinha91@gmail.com

पक्ष भी चुनौतीपूर्ण होते हैं। अंतर-प्रतीकात्मक फिल्मांकन अनुवाद करने का मुख्य उद्देश्य पाठक वर्ग की सीमितता से दर्शक वर्ग की व्यापकता को पकड़ने की कोशिश है। मानव का दृश्य के प्रति आकर्षण का कारण आदिम हो सकता है क्योंकि विचार दृश्य से भी जुड़ता है और शब्द से भी। संभवत: दृश्य से जुड़ने में उसे सुविधा होती है। अत: दृश्य से तादात्मय जल्दी हो जाता है। दृश्य से जुड़ने की सुविधा दर्शक को सरलता की ओर ले जाती है और वह शब्द की जटिलता को आसानी से समझ लेता है। हम कह सकते हैं कि शब्द संकेतात्मक दृश्यों का सहारा पाकर और अधिक सार्थकता ग्रहण करते है और दर्शक से जल्दी जुड़ते हैं।

कला की अलग-अलग विधाओं का अलग-अलग स्वरूप होता है। न केवल उनकी रचना प्रक्रिया अलग होती है बल्कि उनके तत्त्व भी अलग होते है। उपन्यास, कहानी तथा नाटक आदि विधाओं की कथाओं को अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद की सहायता से फिल्म पटकथा में अनूदित किया जा रहा है। भारत में प्राचीनकाल से ही प्रेक्षागृहों में नाटक खेले जाने की प्रथा रही। 'पृथ्वी थियेटर के आने के बाद साहित्य की कथाओं का रूपांतरण तथा प्रतीकांतरण फिल्म जगत में होने लगा था। पुरानी हिंदी ब्लैक एंड वाईट फिल्मों में इसके काफी उदाहरण देखने को मिलते हैं। जैसे फणीश्वर नाथ रेणु प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार के उपन्यास 'तीसरी कसम' पर फिल्म बनी। गुलशन नंदा उपन्यास 'झील के उस पार तथा नीलकमल' का भी फिल्मांतरण हुआ। इसी प्रथा में पंजाब की विख्यात उपन्यासकार अमृता प्रीतम के 'पिंजर' उपन्यास का फिल्मांतरण हुआ है। हालांकि यह रूपांतरण हिंदी उपन्यास को आधार लेकर किया गया है। अमृता प्रीतम को हिंदी साहित्य का एक अमूल्य मोती माना जाता है क्योंकि उन्होंने जितना योगदान पंजाबी साहित्य में दिया, उससे ज्यादा हिंदी में दिया। प्रतीक सिद्धांतों की दृष्टि को ध्यान में रखकर उपन्यास तथा उसके फिल्म रूपांतरण में प्रयुक्त प्रतीकों का विश्लेषण अनुवाद की दृष्टि से किया जा सकता है।

साहित्य पर आधारित फिल्में आज भी बन रही है जो एक ज्वलंत समस्या को एक बड़े वर्ग तक पहुँचा रही हैं- जैसे महाश्वेता देवी के उपन्यास हज़ार चौरासी की माँ पर भी अनुवाद प्रक्रिया का सहारा लेकर फिल्म बनाई गई है। भारतीय पाठक वर्ग के प्रिय अंग्रेजी लेखक चेतन भगत के उपन्यास 'टू स्टेटस' आदि पर भी फिल्म बन रही है। अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद का इस दिशा में बढ़ता प्रयोग प्रतीकांतरण की प्रक्रिया के लिए आवश्यक सामान्य नियमों के शोध की आवश्यकता को बढ़ा रहा है।

एक सदी से फिल्म कला का एक सशक्त माध्यम तथा मनोरंजन के माध्यम के रूप में विद्यमान है। सामाजिक सोद्देश्यता तथा कलात्मक उत्कृष्टता पर आधारित फिल्में बनी हैं परंतु उससे कहीं ज्यादा फिल्में केवल मनोरंजन के उद्देश्य को लिए हुए है। साहित्यिक कृतियाँ फिल्मों के लिए हमेशा प्रेरणा स्रोत रही हैं।

जीवन का यथार्थवादी चित्रण, विभिन्न पात्रों का बाहरी और आंतरिक द्वंद्व, नाटकीयता शैली के साथ-साथ बिंब और प्रतीक जैसे काव्यात्मक उपकरण फिल्म को साहित्य के नजदीक लाते हैं परंतु कई ऐसे उपकरण हैं जो फिल्म तथा साहित्य को अलग रूप में विशिष्टता प्रदान करते हैं। हम साहित्य पर आधारित फिल्म का विश्लेषण करेंगे तो देखेंगे कि कई ऐसे उपकरण हैं जो दोनों की अभिव्यक्ति के साधन को बदलते

हैं। भावार्थ एक ही होता है परंतु अभिव्यक्ति की शैली बदल जाती है। यही अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद है। इस अनुवाद में अनूदित रचना कई बार मूल से कहीं अधिक उच्च स्तर की साबित होती है। उच्च स्तर में यहाँ अर्थ है- अभिव्यक्ति की ऊँचाई। एक उपन्यास को अधिकतर एक साहित्य प्रेमी या शिक्षित वर्ग ही पढ़ता है परंतु जब उसी उपन्यास का अर्थ फिल्म में होता है तो वह एक बड़े जन समुदाय तक पहुँचता है। पाठक वर्ग से दर्शक वर्ग में परिवर्तन हो जाता है। इस अनुवाद के मूल्यांकन के लिए पहला आधार यही है।

पाठक वर्ग से दर्शक वर्ग का बदलता स्वरूप :-

पाठक वर्ग एक सीमित जन का समूह होता है जो शिक्षित या अर्धशिक्षित वर्ग के कुछ भाग से बनता है। इसके साथ ही पाठक वर्ग में सभी पाठक सभी लेखकों को पढ़ें या पसंद करें ऐसा आवश्यक नहीं। पाठक वर्ग साहित्यिक भाषा, अलंकारादि समझने योग्य होता है, पाठक वर्ग में जरूरी नहीं कि रचना से सभी आत्मसात् कर पाए परंतु दर्शक वर्ग का कुछ ही भाग आत्मसात नहीं कर पाता है।

इस प्रकार जब फिल्म में किसी रचना का अनुवाद होता है तो एक अच्छे अनुवाद की परख इस बात से भी लगाई जा सकती है कि फिल्म कितनी टिकी। उसने दर्शक को किस प्रकार आकर्षित किया। दर्शक वर्ग में उसको लेकर एक अलग चेतना जगी या नहीं।

शैली के आधार पर भी हम फिल्म तथा उपन्यास की तुलना कर सकते हैं। किसी भी रचना की एक विशिष्ट शैली होती है और उसी तरह फिल्म की भी अपनी एक विशिष्ट निर्देशन शैली है। इसलिए उपन्यास तथा फिल्म की शैली को समझकर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है कि क्या फिल्म अपनी शैली का उपयोग करके मूल तक पहुँच पाई है- "अपनी शैली निश्चित करने की प्रक्रिया में फिल्म निर्देशक विशेष शूटिंग स्थान (Location), विशेष प्रकाश-व्यवस्था, विशेष छायांकन, विशेष संपादन पद्धति (cutting loatiern), विशिष्ट अभिनय आदि की कल्पना करता है जिसमें निर्देशक के अंतर्मन में छिपी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है जो उसको एक रचनात्मक कलाकार (creative artist) बनाती है।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि फिल्म में भी शैली की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रकाश व्यवस्था, छायांकन, शूटिंग स्थान आदि उपकरण का प्रयोग भावार्थ के लिए स्पष्टीकरण किया जाता है।

पाठक एवं रचनाकार के बीच शब्द एक सेतु का कार्य करते हैं जबकि नायक या फिल्म निर्माण के लिए लिखित शब्द इस कल्पनात्मक उड़ान का मात्र प्रथम बिंदु है और इस कल्पना को साकार करने के लिए कलाकारों का अभिनय, संवाद, मंच सज्जा, विशेष प्रकाश-व्यवस्था, पार्श्व का होना आवश्यक है। मूल्यांकन के लिए साहित्य पर आधारित फिल्म की पटकथा में निम्नलिखित तत्त्व हैं जिनके आधार पर हम किसी फिल्म तथा साहित्य मुख्य तौर पर उपन्यास का तुलनात्मक अध्ययन, विवेचन कर सकते हैं।

1. **समय संयोजन -** ये पटकथा का पहला घटक हैं। पृष्ठों में गिने जाने वाले साहित्य को दो से ढाई घंटे के अंतराल में बांधना होता है जिसके लिए कई अनावश्यक संवाद निर्देशक छोड़ देता है। "पटकथा लिखते

समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक दृश्य का एक-दूसरे से कथात्मक, भावनात्मक तथा समयात्मक संबंध हों और इनमें तीनों तत्त्वों की निरंतरता बनी रहे। दृश्य की आवश्यकता के अनुसार समय को कम या अधिक किया जा सकता है।"

इस प्रकार से समय संयोजन को विश्लेषित करके अनूदित कृति को मूल्यांकित किया जा सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि समय के अभाव में कौन-कौन से संवाद या दृश्य छोड़ दिए गए है और इससे मूल के भावार्थ को ठेस तो नहीं पहुँची।

कथावस्तु :-

कथावस्तु (Theme) का मौलिक होना अनिवार्य नहीं है जितना उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति है। कथावस्तु में निरंतर प्रवाह आवश्यक है। कथावस्तु चरित्र तथा मूल समस्या को विकसित करने वाली होनी चाहिए।

"फिल्म की कहानी का आरंभ चाहे किसी छोटे कथासूत्र, विचार या किसी संपूर्ण कहानी अथवा उपन्यास से हो, पटकथा लेखन के अंत में पहुँचते-पहुँचते परिवर्तन की एक श्रृंखला बन जाती है। ये सभी परिवर्तन दर्शकों की रुचि देखकर ही किए जाते हैं।"

यही परिवर्तन विश्लेषण का विषय बनते हैं कि कहाँ तक अनूदित कृति मूल के निकट रह पा रही है। हालांकि अंतर-प्रतीकात्मक अनुवाद में अनुवादक को अपेक्षाकृत अधिक छूट की आवश्यकता होती है।

कथावस्तु को व्यक्त करने वाले 'गीत', 'सामाजिक सांस्कृतिक शब्दावालियाँ' आदि के आधार पर भी मूल्यांकन किया जा सकता है।

2. **पात्र व चरित्र चित्रण -** पात्र तथा चरित्र-चित्रण के विकास में फिल्म की एक विशिष्ट शैली होती है जो उपन्यास से भिन्न होती है। यहाँ विश्लेषित करना पड़ता है कि पात्र उपन्यास के ही हैं या अलग हैं तथा उनका चारित्रिक विकास उस तरह हो पाया है, जिस प्रकार एक साहित्यकार ने किया है।
3. **संवाद -** संवाद फिल्म का आधार है। संवादों के बिना फिल्म की कल्पना नहीं की जा सकती है। एक साहित्य में संवाद अलग-अलग विधा में अलग-अलग विशेषता लिए होते है। फिल्म में संवाद छोटे और आकर्षक होने चाहिए। ये भावनात्मक तथा दृश्यात्मक अभिव्यक्ति के विस्तार के रूप में होना चाहिए। फिल्म के संवादों की भाषा सामान्यत: सीधी और सरल होती है।

उपन्यास में साहित्यिकता होती है। उपन्यास में संकेतों को लिखित शब्दों में लिपिबद्ध किया जाता है। जैसे 'घोड़े दौड़ रहे हैं।' इस औपन्यासिक पंक्ति को फिल्म में घोड़े के दौड़ते पैर तथा नाल की खटखट की ध्वनि से ही काम चल जाता है। अंत: उपन्यास से ऐसी पंक्तियां हटाने की छूट निर्देशक को मिल जाती है। इन्हीं आधारों पर तुलनात्मक अध्ययन द्वारा अनूदित फिल्म का विश्लेषण कर सकते हैं कि कहाँ तक वह मूल के निकट है तथा कहाँ तक वह साहित्यिकता को बरकरार रखे हुए है।

"अधिकांश साहित्यकार व फिल्मकार प्रकाशित साहित्य पर फिल्म बनाने और बनवाने से कतराते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि साहित्यकार अपने साहित्य की मूल भावना से कोई खिलवाड़ नहीं करना चाहता जबकि फिल्मकार के लिए उस रचना को फिल्म के लिए परिवर्तित करना आवश्यक होता है। जब निर्देशक किसी साहित्यिक रचना पर कार्य कर रहा हो तो उसे अधिक सावधान, संवेदनशील तथा निर्णायक होना चाहिए ताकि मूल लेखक की भावनाओं का अपमान न हो और फिल्म की आवश्यकतानुसार पटकथा लिखी जा सके।"

किसी भी साहित्य विशेष तौर पर उपन्यास से फिल्म में रूपांतरण में सबसे बड़ी कठिनाई होती है उसका मौखिक साहित्यिक स्वरूप। दृश्य द्वारा हम जिसे एक शॉट में अभिव्यक्त कर सकते हैं, उपन्यास में उसे समझाने के लिए कई पैराग्राफ लिखने पड़ते हैं। अत: फिल्म में सिर्फ संवादों के विवरण को कम करने से काम नहीं चलता। संपूर्ण उपन्यास को दृश्य में पुनर्रचित करना होता है जिसमें समय का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। फिल्म रूपांतरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संपूर्ण कहानी का नए सिरे से दृश्य रचना करनी होती है। जिसे अधिकांशत: मूल लेखक नहीं पसंद करते।

संदर्भ सूची-

1. *Nilce M. Pereira, Book Illustration as intersemiotic Translation: Pictures Translation Words.*
2. समीर, श्रीनारायण. (2012). *'अनुवाद और उत्तर आधुनिक अवधारणाएँ'*, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
3. गुप्त, गार्गी. *अनुवाद पत्रिका*, अंक 104. भारतीय अनुवाद परिषद.
4. सिंह, कुलदीप. (2007). *फिल्म निर्देशन*, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
5. भगत, चेतन. (2014). *'हॉफ गर्लफ्रेंड'*, नई दिल्ली: रूपा पब्लिकेशनस्.
6. सिंघल, सुरेश. (2003). *सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद : स्वरूप एवं परंपराएँ*, नई दिल्ली : सार्थक प्रकाशन.
7. सिन्हा, रमण. (2002). *अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
8. सिन्हा, कुलदीप. (2007). *फिल्म निर्देशन* इलाहाबाद: राधाकृष्ण प्रकाशन
9. अवस्थी, प्रहलाद (2011). *हिंदी सिनेमा 20वीं से 21वीं सदी तक*, इलाहाबाद : राधाकृष्ण प्रकाशन.

भारतीय अर्थव्यवस्था पर वैश्वीकृत संस्कृति का प्रभाव

कुलदीप कुमार पांडेय[1]

विश्व का उत्पादक वर्ग अपने उत्पाद को खपाने के लिए बाज़ार की तलाश में रहता है और अपने बाज़ार तंत्र को फैलाता है। आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर चलने वाले इस बाज़ार तंत्र को स्थापित करने के लिए मुक्त व्यापार, निजीकरण और मीडिया तंत्र को जरिया बनाया गया है। इसके लिए उत्पादक द्वारा स्थानीय भाषा का जो प्रयोग किया जाता है वह अनुवाद का आधार लिए हुए होती है। यही कारण है कि आज जनसंचार माध्यमों विशेष रूप से दूरदर्शन प्रसारण और विज्ञापन कला के ज़रिए उपभोक्तावादी बाज़ार संस्कृति बाज़ार में रचने बसने में सुविधा महसूस कर रही रही है। फ़ैक्स, टेलैक्स, कंप्यूटरों आदि जैसे अत्याधुनिक प्रौद्योगिकीय उपकरणों कि उपयोगिता का लाभ उठाकर दुनिया कई क्षेत्रों में विकास कर रही है। हालांकि भूमंडलीय विकास कि धारा बहुराष्ट्रीय आर्थिक और सांस्कृतिक आघात जैसे अंतर्विरोधों की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण एवं विडंबनापूर्ण परिदृश्य भी प्रस्तुत करती है। भारतीय संदर्भ में भूमंडलीकृत बाज़ारवाद का अपना औचित्य है।

वैश्वीकरण की महामाया ने दुनिया को एक गाँव बना दिया है। 'ग्लोबल विलेज' या 'विश्व ग्राम' की आधुनातन संकल्पना इसी का नतीजा है। यह एक विराट संकल्पना है, जिसमें समूची दुनिया के व्यापारिक रूप से जुड़ने का भाव है। पूरी दुनिया के पैमाने पर आज एक ऐसी बाज़ार व्यवस्था उभर चुकी है जिसमें किसी भी देश में तैयार माल या सेवा को किसी भी देश में बेचने में आसानी हो। इस नयी अर्थव्यवस्था में हर कोई शामिल है। इसे किसी से परहेज नहीं है। शर्त बस इतनी सी है कि शामिल होने वाले के पास माल हो तथा खरीदने के लिए धन हो। सेवा के मामले में दक्षता तथा कौशल की मांग हर जगह है और जिस किसी के पास ये गुण है, बाज़ार उसे मुंह-मांगी कीमत देने को तैयार है। इसीलिए आज के युग को व्यवसाय का युग कहा जा सकता है। आज के व्यावसायिक विश्व कि अप्रत्याशित दौड़ में वैश्वीकरण की अपनी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस दौड़ में विकसित एवं विकासशील देश अपने दल बल के साथ सक्रिय रूप में भाग लिए हुए है।

"बाज़ार का इतिहास मानव सभ्यता जितना ही पुराना है किंतु वैश्वीकरण से पहले बाज़ार मानव जीवन और समाज को नियंत्रित तथा परिचालित करने वाला कारक कभी नहीं रहा। बाजार पहले भी थे और उसमें माल असबाब ही बिकते थे। परंतु माल तथा खरीदार के संबंध को जिस प्रकार आज के दौर में परिभाषित किया गया है उसे जैसा महत्त्व दिया गया है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ। आज खरीददार शहंशाह हैं। आज बाज़ार तरह-तरह के माल से भरा पड़ा है और खरीददार कुछ भी कहीं से भी खरीदने को स्वतंत्र है। धन की उपलब्धता भी अब बहुत मायने नहीं रखती। अनेक बैंक और वित्तीय संस्थान धन उपलब्ध करने को तैयार बैठे हैं। कोर बैंकिंग, एटीएम तथा प्लास्टिक मनी (एटीएम/ डेविट कार्ड/ क्रेडिट कार्ड) का मायाजाल

[1]शोध छात्र, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा.
ई-मेल - kuldeep.ramjas.du@gmail.com

नगरों में ही नहीं, कस्बों तथा गाँवों तक में फैल चुका है। बाज़ार भी अब पहले जैसा नहीं रहा कि क्रेता और विक्रेता एक जगह पर मिलें और खरीद बिक्री करें। संचार क्रांति और उत्पादकों की गलाकाट प्रतिस्पर्धा ने बाज़ार को एक तरह से सर्वव्यापी बना दिया है। इस प्रकार बाज़ार का स्वयं में बाज़ार बन जाना, व्यवसाय से प्रवृति बन जाना बाज़ारवाद है। बाज़ारवाद वैश्वीकरण को साकार करने वाली परिघटना है।"

वैश्वीकरण से अन्य देशों से पूँजी, नवीनतम प्रौद्योगिकी और मशीनों का आगमन होता है। उदाहरण के लिए भारत का सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग विकसित देशों में प्रयोग किए जाने वाले कंप्यूटरों और दूरसंचार यंत्रों का प्रयोग करता है। लगभग 30 वर्ष पहले यह अकल्पनीय था। भारत के कुछ संस्थानों के इंजीनियर स्नातकों की अमरीका और यूरोप के कई देशों में बहुत माँग है। कई देशों में सरकारों के पास प्राकृतिक संसाधनों का स्वामित्व होता है और वे पूरी दक्षता से जन-हित में उनका उपयोग करती हैं और लोगों को विभिन्न सेवाएँ उपलब्ध कराती हैं। वैश्वीकरण सरकारों को संसाधनों का निजीकरण करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे लाभ कमाने की दृष्टि से संसाधनों का शोषण होता है और कुछ लोगों के हाथों में पैसा इकट्ठा हो जाता है। निजीकरण उन लोगों को भी वंचित रखता है, जो इन संसाधनों का उपभोग करने के लिए खर्च करने की क्षमता नहीं रखते।

आज वैश्वीकरण का उद्देश्य विश्व बाज़ार का निर्माण करना है, जिसमें सभी देशों की अर्थव्यवस्था जुड़ी रहती है। वैश्वीकरण के द्वारा संपूर्ण विश्व के राष्ट्र-राज्यों की शक्तियों को नियंत्रित करना जिससे विश्व बाज़ार में किसी भी तरह की कोई अड़चन न आए। 1991 के बाद बाज़ार ही समाज का नियंत्रणकर्ता हो गया। आज बाज़ार के द्वारा ही किसी राष्ट्र-राज्य की समृद्धि, आर्थिक स्थिति व शासन व्यवस्था का पता लगाया जा सकता है। वैश्वीकरण के दौर में बाज़ारवाद आने से तकनीक और प्रबंधन अपनी प्रभावशाली स्थिति में दिखाई दे रहे हैं। समाज के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों पर भी बाज़ार कहीं न कहीं अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत की ज्ञान-विज्ञान, वाणिज्य-व्यापार, रक्षा-अनुसंधान आदि अनेक क्षेत्रों में प्रगति और विकास ने विश्व के अन्य विकासशील देशों को तो प्रभावित किया ही है, विकसित देश भी इसकी प्रभाविकता से अपरिचित नहीं हैं। भारत का अतीत जहाँ भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति की विशिष्टता का बोध कराता है, वहीं आज के भारत की परमाणु शक्ति से संपन्नता ने भी बाज़ारवाद को बढ़ावा दिया है। परिणामस्वरूप भारत में विदेशी पूंजी निवेश और विशेष तौर पर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस ओर उन्मुख हुई है। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने पर उन्होंने स्थानीय बाज़ार की मनोदशा का आंकलन किया और इस तथ्य को स्वीकार किया कि भारत की जन-जन की भाषा हिंदी को नज़रअंदाज़ करके वे अपनी उत्पादित उपभोक्ता सामग्री को भारतीय बाज़ार में खपा नहीं सकते। इसलिए वे बड़े पैमाने पर हिंदी का प्रयोग करते हैं और अनुवाद का आश्रय लेकर चलते हैं। अगर वैश्वीकरण को विकास के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो कहना पड़ेगा कि बाज़ारतंत्र का प्रवाह दो तरफ़ा लेन-देन पर आधारित होना चाहिए। इसलिए सभी लोगों को बाज़ारवाद के मनोविज्ञान को समझना चाहिए कि हम अपनी उत्पादित सामग्री को विदेशों तक पहुँचाने और मांग पैदा करने में अनुवाद का आधार लें।"

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति को चुना जिसके अंतर्गत सरकार ने विकास का मार्ग अपनाया। इसने कई बड़े उद्योग स्थापित किए और धीरे-धीरे निजी क्षेत्र को विकसित होने दिया। बरसों तक भारत अपने निर्धारित लक्ष्य पाने में सक्षम नहीं हो सका। कल्याणकारी कार्यो के लिए भारत ने अन्य देशों से ऋण लिया। कुछ स्थितियों में सरकार ने लोगों के पैसे को भी मुक्तहस्त से खर्च किया। 1991 में भारत ऐसी स्थिति में पहुँच गया, जिससे वह बाहर के अन्य देशों से ऋण लेने की विश्वसनीयता खो बैठा। कई अन्य समस्याओं जैसे बढ़ती कीमतें, पर्याप्त पूँजी की कमी, धीमा विकास और प्रौद्योगिकी के पिछड़ेपन ने संकट को बढ़ा दिया। सरकारी खर्च आय से कहीं अधिक हो गया। इसने भारत को वैश्वीकरण की प्रक्रिया को तेज करने तथा दो अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के सुझाव के अनुसार अपने बाजार खोलने को विवश किया। सरकार द्वारा अपनाई गई रणनीति को नई आर्थिक नीति कहा जाता है। इस नीति के अंतर्गत कई गतिविधियों को जो सरकारी क्षेत्र द्वारा ही की जाती थी, निजी क्षेत्र के लिए भी खोल दिया गया। निजी क्षेत्र को कई प्रतिबंध से भी मुक्त कर दिया गया। उन्हें उद्योग प्रारंभ करने तथा व्यापारिक गतिविधियाँ चलाने के लिए कई प्रकार की रियायतें भी दी गई। देश के बाहर से उद्योगपतियों एवं व्यापारियों को उत्पादन करने तथा अपना माल और सेवाएँ भारत में बेचने के लिए आमंत्रित किया गया। कई विदेशी वस्तुओं को, जिन्हें पहले भारत में बेचने की अनुमति नहीं थी, उन्हें भी अनुमति मिल गई।

"भूमंडलीकृत बाज़ारवाद का गरीब देशों और उसके गरीबों से कोई लेना-देना नहीं है। सही अर्थों और संदर्भों में यदि इस बाज़ारवाद और वैश्वीकरण को देखा जाए तो यह पूंजीवादी देशों के अमीरों की क्रांति है। जब इसका अपने ही देश के गरीबों से कोई सरोकार नहीं है तो गरीब देशों के साथ उसका क्या सरोकार हो सकता है। वह बाज़ार जिसको गरीबों ने अपने पुश्तैनी धंधों और श्रम से तैयार किया है। पुश्तैनी धंधों और खेती के सहारे भारत जैसे देश का स्वदेशी बाज़ार निर्मित हुआ। इसी स्वदेशी बाज़ार के मुनाफ़े पर जीने वाले वर्गों और अंग्रेजी शिक्षा के सहारे भारतीय मध्यवर्ग पैदा हुआ। यही कुलीन नौकरशाह मध्यवर्ग देश की नीतियों और जीवित रहने के सिद्धांतों को तय और लागू करता है। यही एक ऐसा वर्ग है जो वैश्वीकरण का स्वागत कर रहा है।

भारत में वैश्वीकरण के अंतर्गत विगत एक दशक में कई विदेशी कंपनियों द्वारा मोटर गाड़ियों, सूचना प्रौद्योगिकी, इलैक्ट्रोनिक्स, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के क्षेत्र में उत्पादन इकाईयाँ लगाई गई हैं। इससे भी बढ़कर कई उपभोक्ता वस्तुओं विशेषत: इलैक्ट्रोनिक्स उद्योग में जैसे रेडियो, टेलीविजन और अन्य घरेलू उपकरणों की कीमतें घटी हैं। दूरसंचार क्षेत्र ने असाधारण प्रगति की है। अतीत में जहाँ हम टेलीविजन पर एक या दो चैनल देख पाते थे, उसके स्थान पर अब हम अनेक चैनल देख सकते हैं। हमारे यहाँ सेल्युलर फोन प्रयोग करने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ हो गई है, कंप्यूटर और अन्य आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग खूब बढ़ा है। जब विकासशील देशों को व्यापार के लिए विकसित देशों से सौदेबाजी करनी होती है तो भारत एक नेता के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक क्षेत्र जिसमें वैश्वीकरण भारत के लिए उपयोगी नहीं है, वह

है– रोजगार पैदा करना। यद्यपि इसने कुछ अत्यधिक कुशल कारीगरों को अधिक कमाई के अवसर प्रदान किए परंतु वैश्वीकरण व्यापक स्तर पर रोजगार पैदा करने में असफल रहा। अभी कृषि को, जो भारत की रीढ़ की हड्डी है, वैश्वीकरण का लाभ मिलना शेष है। भारत के अनेक भू-भागों को विश्व के अन्य भागों में उपलब्ध भिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी का कुशलता से प्रयोग कर सिंचाई व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। विकसित देशों में खेती के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों को अपनाने के लिए भारतीय कृषकों को शिक्षित करना है।

भारत में भूमंडलीकरण का जो भूचाल आया है, वह 'कल्याणकारी पूंजीवाद' तो नहीं ही है। मुमकिन है कि विकसित पूंजीवादी देशों में वह कोई कल्याणकारी शक्ल रखता हो, पर विकासशील देशों में वह शोषक की शक्ल में ही आया है। भूमंडलीकरण की छतरी के नीचे बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जो हमला आज हो रहा है, वह केवल हमारी अर्थव्यस्था पर नहीं है। इसे समझना ज़रूरी है। यह हमला प्रगतिकामी जीवंत भारतीय संस्कृति, परंपरा, जीवन शैली पर ही नहीं, बल्कि वैचारिक संघर्ष से जैसे-तैसे विकसित होते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों पर भी है। भारत ने जो लोकतांत्रिक संविधान बनाया है, उसके अंतर्गत बनने वाली सरकारों का स्वरूप 'ट्रस्टी' का है। वे सरकारें जनता की परिवर्तनकामी, न्यायपूर्ण समाज रचना के मिशन को लेकर सत्ता संभालती हैं। यह बात दूसरी है कि सत्ता संभालते ही वे गुमराह हो जाती हैं। लेकिन इसका दोष हम संविधान पर नहीं मढ़ सकते। पूंजीवादी देशों के लोकतंत्र में सरकार की संरचना और रोल अब बदल चुका है। वे सरकारें 'ट्रस्टी' नहीं होतीं, वे वर्ग-हितों के आधार और वायदों पर बनती हैं। अतः वे सरकारें उन्हीं वर्गों के हितों को अग्रसर करती हैं, जिनके बल पर वे सत्ता में आती हैं। उन्हीं के 'लोक कल्याण' को आज मानव हितैषी और कल्याणकारी पूंजीवाद का नाम दिया जा रहा है। ऐसा कहना अमर्त्यसेन जैसे प्रगतिशील विचारक की मज़बूरी भी है, क्योंकि बाजारवादी भूमंडलीकरण ने और कोई रास्ता छोड़ा भी नहीं है। आणविक अस्त्रों, प्रयोगशालाओं, अर्थव्यवस्था, सैनिक तंत्र, वैज्ञानिक शोध, संचार-साधनों आदि सभी पर उनका भूमण्डलीकृत एकाधिकार है। ऐसे में वैचारिक संघर्ष का एक ही रास्ता बचता है जिसे अमर्त्यसेन ने ईजाद किया है। जानना यह ज़रूरी है कि इस बाज़ारवाद का जीवन दर्शन है- निर्लज्ज उपभोक्तावाद ! इसके लिए वह आज के तीव्रगामी सूचनातंत्र का सहारा लेता है। वह दस सेकंड में यह बताता है कि कोई वाशिंग मशीन आपके लिए कितनी उपयोगी है। और यहीं, अनकहे तरीके से वह हमारी समाज-रचना के उस धागे को तोड़ देता है जो हमारे समाज में हमें परस्पर पूरक बनाता है। वाशिंग मशीन के बारे में सोचते ही हमारा रिश्ता घर के धोबी से टूटने लगता है। इसी तरह उपभोक्ता संस्कृति में नई चीजों की भूख पैदा की जाती है, फिर चाहे वे चीजें जीवन के लिए ज़रूरी हों या न हों।

व्यापार का पुराना नियम था- मांग के अनुसार पूर्ति। वैश्विक बाज़ारवाद ने यह नियम एकदम बदल दिया है। अब पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली अपना उत्पादन इस नज़रिए से करती है कि किस चीज को बनाकर अधिकतम मुनाफा बटोरा जा सकता है। फिर वह उद्योगपति अपने प्रोडक्ट की मांग पैदा करता है। ज़रूरत न

हो, तो भी मध्यवर्ग उस प्रोडक्ट को खरीदने लगता है। फिर उसे लगने लगता है कि वह प्रोडक्ट उसके कुलीन व्यक्तित्व का ज़रूरी हिस्सा बन गया है।

वैश्वीकरण ने हमारी अर्थव्यवस्था को स्टाक मार्केट के हवाले कर दिया है। लोगों के जीवन से स्थिरता को छीन लिया है, देश को मोबाइल और कंप्यूटर के कूड़ेदान में बदल डाला है। यही नहीं उसने समूची मानवजाति से कर्ता का अहसास छीनकर उसे उपभोक्ता में बदल डाला है। शिक्षा के क्षेत्र में इसने परिणामवाद के दर्शन को स्थापित किया है और उसके व्यवसायीकरण को बढ़ावा दिया है। कोई कह सकता है कि ये परिवर्तन भारतीय समाज के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ देंगे और उस पर आधारित शोषण दमन भी खत्म हो जाएगा लेकिन अतीत के अनुभव बताते हैं कि ऐसे परिवर्तन पहले से मौजूद ढाँचे को तोड़ने की जगह उसे पुनर्जीवन ही प्रदान करते आए हैं। औपनिवेशिक दौर से इस दौर की भिन्नता इस बात में जरूर है कि साम्राज्यवाद का विरोध पहले के मुकाबले अधिक सार्वदेशिक हुआ है। हमारे देश में भी प्रशंसकों की तादाद ज्यादा है लेकिन जैसे-जैसे इसके प्रभाव प्रत्यक्ष होंगे भारत भी लैटिन अमेरिकी देशों की राह पर आगे बढ़ेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भार्गव, नरेश (2014), वैश्वीकरण समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, जयपुर, रावत पब्लिकेशन
2. उपाध्यय, रमेश (2004), श्रम का भूमंडलीकरण, नई दिल्लीं, शब्दसंधान प्रकाशन
3. सङ्गोपाल, अनिल. (2008), शिक्षा और भूमंडलीकरण, नई दिल्ली, शब्दसंधान प्रकाशन
4. पचौरी, सुधीश (2011). पॉपुलर कल्चर के विमर्श, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
5. पचौरी, सुधीश (2006), देरिदा: विखंडन की सैद्धांतिकी, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन
6. काबरा, कमलनयन. (2008). 'भूमण्डरलीकरण के भँवर में भारत', द्वितीय संस्करण, नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.

बैगा जनजातीय में परंपरागत चिकित्सा पद्धति (जड़ी-बूटियों) का अध्ययन *(अनूपपुर जिला, मध्य-प्रदेश)*

उमेश कुमार[1]

सारांश

वर्तमान अध्ययन बैगा आदिवासी समुदायों के परंपरागत चिकित्सा पद्धति के देशज ज्ञान नृऔषधि जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों के ऊपर अध्ययन किया गया है। बैगा आदिवादी समुदाय के लोग बड़े से बड़े एवं छोटे से छोटे बीमारी का इलाज अपने परंपरागत चिकित्सा पद्धति के देशज ज्ञान के आधार पर अपने आस-पास के जंगलों से प्राप्त पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों व छालों के माध्यम से इलाज करने की प्रथाएं पायी जाती है। बैगा आदिवासी समुदाय के लोग सदियों से ही अपने शरीर से संबंधित बीमारी एवं विकार के लिए बैगा समुदाय के देवार / ओझा गुनिया के पास जाकर अपना बीमारी का चिकित्सीय इलाज कराते हैं। बैगा आदिवासी देवार/ ओझा अपने परंपरागत चिकित्सा पद्धति, देशज ज्ञान के आधार पर जंगलों से प्राप्त पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों व छालों के माध्यम से इलाज करने की प्रथाएं पायी जाती थी। आज वर्तमान समय में भी बैगा समुदायों के लोग बीमारी के लिए अपने आस-पास के गुनिया / ओझा / वैधराज / देवार के पास चिकित्सीय इलाज कराने के लिए जाते है। इस समुदाय के लोग आज भी पूरी तरह से स्थानीय नृऔषधि चिकित्सा पद्धति परंपरागत देशज ज्ञान के ऊपर ही पूरी तरह से निर्भर होते है। इन समुदायों में बीमारी होने पर परंपरागत चिकित्सा पद्धति से इलाज करते है। बैगा आदिवासी समुदाय चिकित्सक अपने चिकित्सा पद्धति में विभिन्न बीमारी के लिए अलग-अलग पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों, छालों, फूल, पत्तियों, कांदा, तना एवं बीजों का उपयोग बीमारी को ठीक करने के लिए किया जाता हैं उसके बारे में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले के पुष्पराजगढ़ विकासखंड के हर्राटोला ग्राम पंचायत के फर्रीसेमर, जालेश्वर टोला, बाराती टोला, दमगढ़, भेलवा टोला, जमुनादादर में अनुसंधान कार्य किया गया है। बैगा आदिवासी समुदाय में बीमारी होने पर परंपरागत चिकित्सा पद्धति देशज ज्ञान के आधार पर जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों व छाल का उपयोग करते है, उससे संबंधित बीमारी का स्थानीय नाम, वैज्ञानिक नाम, पेड़-पौधे के उपयोगी भाग, दवाई देने की तरीका / विधि, बीमारी का इलाज, बीमारी का हिन्दी नाम आदि से संबंधित आंकड़े एकत्रित करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन में ये जाने का प्रयास किया गया है कि उस परंपरागत देशज ज्ञान के जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों व छालों में ऐसा कौन सी तत्त्व विधमान होती है, जिसकी

[1] पी एच.डी शोधार्थी, मानव विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110068
ईमेल- umeshjhariya89@gmail.com मोब.- 9406757312

वजह से बीमारी ठीक करने की शक्ति होती है यह जाने का प्रयास इस अनुसंधान कार्य में किया गया हैं।

मुख्य शब्द – जंगली, पेड़-पौधे के जड़ी-बूटी, बीमारी, बैगा आदिवासी समुदाय, अनूपपुर (क्षेत्र)

प्रस्तावना :-

मानव विज्ञान में मुख्य रूप से चार शाखाएं मानी जाती है जिसमें से सामाजिक मानव विज्ञान के उपशाखा के रूप में चिकित्सा मानव विज्ञान को रखा गया है। चिकित्सा मानव विज्ञान के अंतर्गत बीमारी, स्वास्थ्य, सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक एवं परंपरागत प्रथाओं के बारे में मुख्य रूप से अध्ययन किया जाता हैं। चिकित्सा मानव विज्ञान के क्षेत्रों में 19वीं शताब्दी के बाद से ही बीमारी के क्षेत्र में कई शोध कार्य किये। जिसमें से मुख्य रूप से चिकित्सा मानव विज्ञान के क्षेत्र में रोडॉल्फ वरचॉव (Rudolf Virchow) 1848 ने चिकित्सा को सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि कोण से देखा था। उनके अनुसार सामाजिक परिस्थियाँ बीमारी के कारक का काम करती हैं। उन्होंने (1848) में एक पत्रिका निकली जिसमें चिकित्सा मानव विज्ञान को पूर्णतय: एक सामाजिक विज्ञान माना गया। इसके पश्चात मानव विज्ञान में बीमारी के सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों के अध्ययन के क्षेत्र में कई शोध कार्य हुए। इसके बाद 19वीं शताब्दी के छठे दशक (1960s) में चिकित्सा मानव विज्ञान की एक अलग शाखा के रूप में आवश्यकता महसूस की गयी। Foster and Anderson (1978) ने 1963 की तीन घटनाओं को निर्धारित किया, जिनकी वजह से चिकित्सा मानव विज्ञान एक विषय की भांति प्रसिध्द हुआ। चिकित्सा मानव विज्ञान की आरंभिक विकास में कुछ विद्वानों का योगदान प्रमुख रहा जिसमें से W.H.R. Rivers ; (1924-1926), Forest Clements ; (1932), Ackerknecht ; (1942-1945), Paul; 1955, Alland ; 1966 आदि चिकित्सा मानव शास्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसके आलवा भी भारत में चिकित्सा मानव विज्ञान के ऊपर भी कई विद्वानों ने शोध कार्य किये, जिसमें से कुछ विद्वान इस प्रकार है- V. Elwin ; 1939, Marriot ; 1955, Carstairs; 1955, and Gould ; 1957 के महत्वपूर्ण शोध कार्य प्रकाशित हुए, जिसमें पारंपरिक चिकित्सा प्राणली का उसके सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में वर्णन किया गया था। आरंभ से ही चिकित्सा मानव शास्त्रियों में पारंपरिक जनजातीय समाज के सदस्यों के बीच चिकित्सा संबंधी मान्यताओं और प्रथाओं का अध्ययन के प्रति जिज्ञासा रही है। तब से आज वर्तमान समय में भी चिकित्सा मानव विज्ञान विषय का अध्ययन ज़ोर सोर से किया जा रहा है। चिकित्सा मानव विज्ञान विषय के अंतर्गत जनजातीय समुदायों, के विभिन्न पक्षो के बारे में अध्ययन किया जा रहा है। जनजातीय समुदाय आदिम समय से ही रोगों को दूर करने के लिए विभिन्न तरह के परंपरागत देशज ज्ञान के आधार पर जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों व छाल का उपयोग करके रोगों को दूर करने के लिए उपयोग किया करते थे और आज वर्तमान समय में कर रहे है। जनजातीय समुदाय में रोगों से ग्रस्त होने पर परंपरागत चिकित्सा पद्धति से जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों व झाड़-फुक के माध्यम से छोटे से छोटे बड़े से बड़े बीमारी का इलाज उस ग्राम के देवार / ओझा / गुनिया / चिकित्सक के द्वारा किया जाता है।

बैगा जनजाति :-

बैगा जनजातीय एक विशेष पिछड़ी जनजातीय के रूप में सम्मलित किया गया है, मध्य प्रदेश में मुख्य रूप से बैगा, भरिया, सहरिया जनजातीय को विशेष पिछड़ी जनजातीय के रूप में सम्मलित किया गया है। जिसमें से बैगा जनजातीय एक प्रमुख जनजाति के रूप में माना जाता है। आदिम जनजातियों में कुछ जनजातीय समूह है, जिसमें घटती हुई या स्थिर जनसंख्या, साक्षारता का निम्न स्तर, कृषि पूर्व प्रौद्योगिकी एवं वे लोग आर्थिक रूप से विशेष पिछड़े हुए समूह होते हैं। ये समूह हमारे समाज के सबसे कमजोर वर्गों में से एक है क्योंकि इनकी संख्या बहुत ही कम है, जिस वजह से उनका सामाजिक- सांस्कृतिक, राजनैतिक, शैक्षणिक , धार्मिक एवं आर्थिक विकास नहीं हो पाता है। तथा समान्य; खराब अव संरचना एवं प्रशासनिक समर्थन वाले सुदूर क्षेत्रों में विशेष रूप से निवास करते हैं। हमारे देश में 17 राज्यों एवं 1 संघ राज्य क्षेत्र में 75 ऐसे समूहों की पहचान की गई तथा उन्हें विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (PVTG) के रूप में श्रेणी बध्द किया गया है इन्हीं में से एक है बैगा जनजातीय। बैगा जनजातीय मध्य प्रदेश के आदिम जन जातियों में से एक है। जो वर्तमान समय में मध्य प्रदेश की तीसरी सबसे बड़ी जनजाति समूह है। मध्य प्रदेश के अनुपपुर, डिंडोरी, मंडला शहडोल , उमरिया, बालाघाट जिले में मुख्य रूप से बैगा जनजाति का वितरण मिलता है। बैगा जनजाति की उप जनजातियों में नारोतिया, भरोतिया, रायमैना, कंठमैना और रेमैना आदि प्रमुख है। बैगा जनजाति समूह में निवास करते है इनके समुदाय में एकल परिवार की प्रथाएं पायी जाती है, बैगा जनजाति के लोग पूरी तरह से जंगल के ऊपर निर्भर होते है अपनी दैनिक आवश्यकयाओं की पूर्ति अपने आस-पास के जंगलों से खाद्य पदार्थ एवं अन्य वस्तुओं का संग्रहण करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। बैगा जनजाति के लोग गोदना प्रथाएं को प्रमुख रूप से मानते है ये लोग गोदना प्रथा को अत्यधिक मानते है। बैगा जनजाति के लोगों का मानना है कि जो महिला व पुरुष गोदना नही गोदवाते है तो उनके समाज में निर्धनता का प्रतीक माना जाता हैं। बैगा महिला अपने पूरे शरीर में गोदना गोदवाती है गोदना गोदवाने से एक तरह का नृऔषधि का काम करती है। गोदना गोदवाने से उनके शरीर में किसी भी तरह का चर्म रोग नहीं हो सकता ऐसा मानना बैगा जनजाति के लोगों का है। गोदना एक तरह का नृऔषधि का काम करती है।

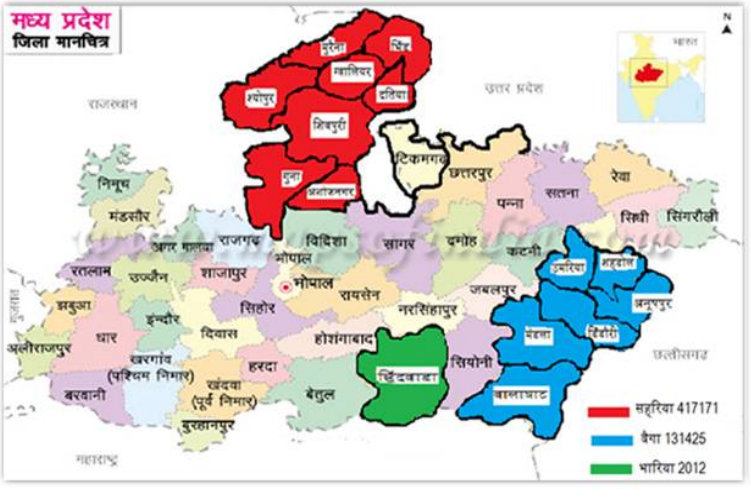

अध्ययन क्षेत्र :-

यह अनुसंधान कार्य मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले के पुष्पराजगढ़ विकास खंड के ग्राम पंचायत हर्राटोला, फर्रीसेमर, भेलवा टोला, दमगढ़, जालेश्वर टोला, बाराती टोला, एवं जमुना दादर अमरकंटक गाँव में अनुसंधान कार्य किया गया है। अनूपपुर जिला मध्य प्रदेश के उत्तर- पूर्वी भाग में स्थिति है, यह जिला 15 अगस्त सन 2003 को शहडोल जिले के पुनगर्ठन द्वारा आस्तित्व में आया था। अनूपपुर जिले का क्षेत्र फल 3701 वर्ग किलो मीटर है, जो पूर्व से पश्चिमी में 80 किलो मीटर और उत्तर से दक्षिण तक 70 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। यह जिला मुख्य रूप से पहाड़ी व जनजातीय जिला है। यहां के जंगलों में साल के मिश्रित पेड़-पौधों के घने जंगलों के पर्वतों के साथ खूब सूरत मनोरम दृश्य दिखाई देती है। यहां के घने जंगलों में जड़ी-बूटियों का भण्डार होता है। यहां के जंगलों में कई तरह के जड़ी-बूटी पायी जाती है जो और कोई जंगल से प्राप्त नहीं हो सकता है। अनूपपुर जिला से नर्मदा नदी मैकल पहाड़ियों पर स्थित अमरकंटक से निकलती है। जो जिले के लिए सुंदर दृश्य होती है सोन और जोहिला नदी भी मैकल पहाड़ियों से उद्गम होती है। इस जिले में विशेष रूप से आदिवासी निवास करते है इसलिए इस जिला को आदिवासी जिला घोषित किया गया है। इस वजह से यहां पर निवास करने वाले आदिवासियों का जीवन स्तर ही सरल और सुगम है, उनके घर विशेष रूप से मिट्टी, बांस की झाड़ी, घान के पुआल (पैरा) और स्थानीय तौर- तरीकों से बने होते हैं। यहां पर निवास करने वाले आदिवासी पुरुष विशेष रूप से इनके वस्त्र-आभूषण- धोती, कुर्त्ता, पगड़ी, कोट इत्यादि पहनते है। महिलाएं भी विशेष रूप से इनके वस्त्र- आभूषण- लुगरा, साड़ी, पोलका इत्यादि पहनती है, इनकी साड़ी हमेशा पट्टी लगी हुई होती है। यहां पर निवास करने वाले आदिवासी समुदाय की महिलाएं अपने शरीर के अंगों हाथ, पैर, छाती, पीठ, जांघ को गोदना से आभूषित करती है। आदिवासी समुदाय के महिलाएं बांस, बीज और धातुओं से बने विभिन्न प्रकार के गहने पहनती है। यहां की आदिवासी की जीवन बहुत ही सरल व सुगम होती हैं।

अध्ययन के उदेश्य :-

- बैगा आदिवासी समुदाय के नृऔषधि पेड़-पौधे, छाल एवं पत्तियों से रोगों का चिकित्सा उपचार को जानना।
- विभिन्न रोगों के लिए परंपरागत देशज ज्ञान के चिकित्सीय इलाज प्रथाओं को जानना।

प्रमुख शब्दों की क्रियाशील परिभाषा:-

नृऔषधीय पौधे (Ethno-Medicinal plants)**:-**इसका तात्पर्य उन पौधो से है जिनका प्रयोग विभिन्न रोगों के लिए किया जाता और वे उन आदिवासियों के पारिस्थितिकी में मिलते हैं, जिनका ज्ञान इनको पीढ़ी गत और अनुभवजनित होता है।

बैगा (Baiga):- यह एक प्रकार का आदिवासी समूह है क्योंकि यह सामान्य समाज से दूरस्थ क्षेत्रों में मिलती है और इनका सम्पूर्ण जीवन बहुत सरल होता है। इसके साथ ही साथ उनका रहवास पूर्णतः प्रकृति में ही होता

है। इस शोध में जिन बैगा समुदाय को शोध समूह के रूप में चुना गया है, उनका संबंध केवल मध्य प्रदेश के अनुपपुर जिले से है। अन्य किसी पारिस्थितिकी क्षेत्र से नहीं है।

सामग्री और प्रविधि :-

यह अध्ययन अनूपपुर जिले के चयनित आदिवासी क्षेत्रों में आयोजित किया गया है। जहां पर पारंपरिक चिकित्सक बीमारी के उपचार के लिए नृऔषधि जंगली पेड़-पौधे व छाल के जड़ी-बूटियों का देशज ज्ञान के आधार पर पारंपरिक देशज ज्ञान के रूप से अभ्यास करते है उस गाँव का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से जंगली पेड़-पौधे व छाल के जड़ी-बूटी का पारंपरिक रूप से इलाज वहां के चिकित्सक के द्वारा किया जाता हैं। कुछ रोगों का इलाज देवी-देवता के आराधना व पूजा-पाठ व झाड-फुक के माध्यम से भी स्थानीय चिकित्सक के द्वारा किया जाता है। इस अनुसंधान कार्य में मानव विज्ञान के कुछ पारंपरिक शोध प्रविधि व तकनीक का उपयोग किया गया है जैसे- Observation, Interview, In-depth interview, Case study, Focus Group Discussion, Life History and Participant and Non-participant Observation के माध्यम से तथ्य संग्रह किया गया हैं।

पारंपरिक देशज चिकित्सा पद्धति की प्रथाएं :- बैगा आदिवासी समुदाय के लोग बीमारी होने पर गाँव के देवार / ओझा / गुनिया के पास सबसे पहले जाते है। बैगा आदिवासी समुदाय के लोग पूरी तरह से परंपरागत देशज चिकित्सा पद्धति के आधार पर जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटी, छाल के ऊपर निर्भर होते है। आदिवासी समुदाय को कितना भी बड़े बीमारी हो जाएं ये लोग गाँव के देवार / ओझा / गुनिया के पास ही इलाज के लिए जाते है। इसी तरह से शारीरिक रोगों से संबंधित समस्या के लिए भी गाँव के देवार के पास चिकित्सीय इलाज के लिए जाते है। आदिवासी समुदाय के चिकित्सक लोग बड़े से बड़े बीमारी का इलाज जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों,झाड़-फुक, देवी-देवता के आराधना एवं पूजा-पाठ से परंपरागत देशज ज्ञान के आधार पर करते है। गाँव के चिकित्सक देवार / ओझा / गुनिया के पास बैगा आदिवासी समुदाय के लोग इलाज करवाने के लिए जाते है। चिकित्सक देवार को एक नारियल, अगरवत्ती, एक बोतल महुआ फूल के दारू देना पड़ता है। उसके बाद ही रोगी के हाथ के नाड़ी को छुकर बीमार का पता लगाया जाता है उसके बाद ही बीमार व्यक्ति को बीमारी के अनुसार ही रोगीं को दवाई दिया जाता है। चिकित्सक देवार / ओझा / गुनिया कई बीमारी का इलाज देवी-देवता के आराधना, पूजा-पाठ एवं झाड-फूक के द्वारा भी रोगी का इलाज किया जाता हैं।

परंपरागत देशज चिकित्सक और अनुष्ठान विशेषज्ञ:- बैगा आदिवासी चिकित्सक विभिन्न तरह के रोगों का इलाज अपने परंपरागत देशज ज्ञान के आधार पर विभिन्न बीमारी के लिए विभिन्न तरह के जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटी, छाल, पत्तियों एवं बीजों का उपयोग बीमारी को ठीक करने के लिए करते हैं। इसके अलावा भी जनजातीय चिकित्सक यदि कई रोगों का इलाज जड़ी-बूटी से ठीक नहीं होने की स्थिति में देवी-देवता के पूजा-पाठ ईश्वरी आराधना के माध्यम से भी बीमारी को ठीक करने का प्रयास किया जाता हैं। इसके अलावा भी बैगा चिकित्सक रोगी को झाड़-फूक के माध्यम से भी इलाज करने का काम करते है। जो गाँव का

मुख्य चिकित्सक होता है वह गाँव या बाहर वालों का चिकित्सक इलाज करने के अलावा भी अपने गाँव का मुख्य पुजारी / पांडा / देवार / ओझा / गुनिया के भूमिका का निर्वाह करते है। देवार का काम होता है गाँव में किसी भी तरह की रोगों का जानकारी होना उस रोग का निदान पाना ये गाँव का देवार/ पांडा/ गुनिया होता है वह गाँव के विभिन्न तरह के देवी-देवता का मुख्य पुजारी होता है। गाँव में मुख्य रूप से वर्ष में तीन बार ग्राम देवी-देवता की पूजा की जाती है। ज्येष्ट के शुक्ल पक्ष पुर्णिमा को विदरी, आषाढ़ में दाऊली एवं आश्विन के दशमी के दिन दशहरा का त्यौहार मनाया जाता है। इन तीनों त्यौहारों में जो गाँव का मुख्य देवार / गुनिया/ ओझा चिकित्सक होते है उनका महत्वपूर्ण भूमिका होता हैं। इसके अलाव भी गाँव के जो मुख्य चिकित्सक, देवार होते है वे लोग अपने गाँव के किसी भी प्रकार के सामाजिक कार्यक्रम जैसे- जन्म संस्कार, अन्नप्रसना संस्कार, विवाह संस्कार, सामाजिक बैठक, लड़ाई- झगड़ा एवं मृत्यू संस्कार में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गाँव के मुख्य चिकित्सक का काम गाँव के हर तरह से गाँव में निवास करने वाले व्यक्ति एवं गाँव में बाहरी रोगों से रक्षा करना होता हैं। गाँव में किसी भी तरह के रोग- दोष आने पर उसका निवारण भी मुख्य चिकित्सक के द्वारा किया जाता हैं।

बैगा आदिवासी चिकित्सक के द्वारा उपयोग किये जाने वाले जड़ी-बूटी

क्र.	पेड़-पौधे का नाम		अभ्यास	उपचार में प्रयुक्त पेड़-पौधे का भाग	दवाई खाने का समय	बीमारी / विकार
	स्थानीय नाम	वैज्ञानिक नाम				
1	मुनगा	*Moringaoleifera*	पेड़	छाल	सुबह शाम	तालुका रोग (Talik Disease)
2	दहीमन	*Cordia Macleoii*	पेड़	छाल	सुबह शाम	चर्म रोग (SkinDisease)
3	हिंग, लहसुन, राई तेल, झागरहा, चिरचिरा	*Ferula assafoetida, Allium sativum. Linn, Brassica Aiba, Gloriosa Superba. Line, Achyranthes Aspera,*	झाड़ी	जड़ / कांदा	सुबह शाम	सटिका रोग (Exactitude Disease)
4	गौहुआ कीड़ा, मुनगा, मूसली	*Moringa oleifera, Chlorophytum Arundinaceum.*	पेड़/ झाड़ी	छाल / कांदा	सुबह शाम	ख़ासी दमा रोग (Asthma Cough Disease)
5	पिहरी चारा	*Agaricus Bisporus.*	पिहरी	पिहरी	सुबह शाम	गोला रोग (Disease)
6	वन पिहरी	*Agaricus Bisporus.*	पिहरी	पिहरी	सुबह	झिझरी बाव रोग

					शाम	(Disease)
7	तेजराज, बलराज, भोगराज, कामराज, हंसराज, कटहल, हर्रा, तिनसा, सरई, बीजा, सतावर, रोहिना, मोहलाइन, बहेरा 20 जड़ी	*Peucedanam nagpurense, Peucedanum dhana Buch, Helminthhostachys, Zeylanicam Adiantum philippense, Artocarpus heterophyllus, Terminalia chebula, Ougeinia dalbergioides.Benth Boswellia serrata, Pterocarpus marsupium, Asparagus recemosus. Will , Soymida febrifuga herbacea, Bauhinia vahlii weight, Terminalia Belerica. Roxb.*	पेड़/ झाड़ी/ बेला	जड़ / कांदा	सुबह शाम	सीख लिंग रोग/ कमजोरी शरीर (Sex Less / Weakness)
8	इंड्रावन, भष्म पत्ती	*Citrullus colocynthis.*	पौधा	जड़ / पत्ती	सुबह शाम	गैस बनाना (Gastric Problem)
9	पतावन, मंझीट	*Diospyros Montana, Rabla Cordifolia*	छोटा पौधा	जड़	सुबह शाम	पीलिया बुखार (Jaundice Fever)
10	हटिल	*Murraya paniculata.*	पौधा	जड़	सुबह शाम	कमर दर्द (Back Pain)
11	दुबी	*Cynodon daetylon . pers*	पौधा	जड़	सुबह शाम	पेट दर्द (Abdominal Pain)
12	पाडिन, टेडिया, सुगंधिन	*Cissampelos pareira. Linn.Artemisia Patlens .*	पौधा	जड़ / छाल	सुबह	बुखार (Fever)

13	जोगी लट्ठी, सफ़ेद मूसली, तेजराज, भोगराज बलराज कामराज	*Asparagusrecemosus. Linn, Chlorophytum Arundinaceu, Peucedana nagpurrense Peucedanam dhanabuch, Pangamia pinnatamars.*	पौधा	जड़ / छाल	सुबह	कमजोरी (WEAKNESS)
14	मंझीट, चारमूही	*Rabla cordifolia.*	छोटा पौधा	जड़	सुबह	पीलिया बुखार (Jaundice Fever)
15	हड़जोड़, विधारा, हड़ज़ोर, हड़ संगरी	*Argyreia nervosa. Cissus quadrangularis. Linn. Nyctanthes arbor.*	बेला	संपूर्ण भाग	सुबह	हड्डी टूटना (Bone Fracture)
16	बोईर , करौदा	*Zizyphus Jujuba. Lank, Carissa spinarum.*	झाड़ी	जड़	सुबह	गर्मी (Fervency)
17	पाडिन, अमजुन	*Cissampelos pareira.*	बेला	जड़	सुबह	पेचीस दस्त (Loose motion)
18	सतावर, सफ़ेद मूसली, तेजराज, भोगराज, बलराज, काम राज, सफ़ेद मूसली रोहिना, आवखत	*Asparagus Recemosus. Willd. Chlorophytum Arundinaceum. Peucedanam Nagpurense. Peucedanum. Dhana buch. Pangamia. Pinnata mars, Chlorophytum Arundinaceum, Soymida febrifuga Herbacea,*	झाड़ी	कांदा	सुबह	कमजोरी शरीर (Body Weakness)
19	कालमी		पेड़	पत्ती	सुबह	सिर दर्द (Headache)
20	थूवा	*Euphorbia neriifolia. Linn.*	झाड़ी	पत्ती	सुबह शाम	शरीर सूजन (Body Swelling)

21	वन जीर	*Vernonle Anthelmintca*	झाड़ी	पत्ती / बीज	सुबह	मलेरिया बुखार (Malaria Fever)
22	नीम	*Azadirachta indica.*	पेड़	संपूर्ण भाग	सुबह शाम	खुजली धाव (Inching, Wound)
23	गुलवाकवली	*Hedychium*	झाड़ी	फूल	सुबह	दमा/ ख़ासी (Asthma cough)
24	पाडिन, चिरायता, भुई नीम	*Cissampelos pareira, Swertia chirayita,*	बेला, झाड़ी	जड़	सुबह	बुखार (Fever)
25	आवला, कुंभी	*Phylanthus cmblica, Linn. Careya arborea, Roxb*	पेड़	जड़ / छाल	सुबह	खूनी दस्त (Haematochezia)
26	किरकिच, कमल पौधा	*Nelumbo nucifera*	झाड़ी/ जलीय पौधा	जड़	सुबह	बामी रोग (Bamy Diseases)
27	घोटोर	*Zizyphus xylopyra.Willd.*	झाड़ी	जड़	सुबह शाम	पाठ बीमारी (Body one side pain)
28	कुटज, रोहिना कोराय	*Holarrhea Antidysenteria. Wall, Soymida febrifuga*	पेड़	जड़/ छाल	सुबह शाम	झुन बीमारी
29	कोराय, हाथी लींद	*Loxodanta.*	पेड़	छाल	सुबह शाम	फुलनी (Swelling)
30	भैंस पांजर		झाड़ी	जड़	सुबह शाम	भूत लगाना (Evil Spirit)
31	तिनसा, बीजा	*Ougeinia dalbcrgioides, bunth. Pterocarpus marsupium*	पेड़	छाल	सुबह	खूनी दस्त (Haematochezia)
32	वन चना		झाड़ी	जड़	सुबह	छाती दर्द (Chest Pain)
33	अमजुन		झाड़ी	जड़	सुबह शाम	कमर दर्द (Back pain)
34	कोरकोट		झाड़ी	जड़ /	सुबह	घाव / खुजली /

				छाल	शाम	चर्म रोग (Wound / Skin Disease)
35	बिरंगी, बाबुल	*Acacia macleodii*	पेड़	छाल	सुबह	आव पेट (Recurrent Dysentery)
36	घोटूर	*Zizyphus xylopyra. Willd.*	झाड़ी	छाल / जड़	सुबह शाम	सर्दी जुखाम (Defluxion)
37	भस्म पत्ती	*Bryophyllum Pinnatum*	झाड़ी	पत्ती	सुबह	पाचन क्रिया के लिए
38	कुंभी	*Careya arborea.*	पेड़	छाल	सूबह शाम	बड़े माता बीमारी (Chicken Pox)

औषधि के रूप में उपयोग किये जाने वाले पेड़-पौधे –देशज चिकित्सक

अध्ययन का निष्कर्ष :-

बैगा आदिवासी समुदाय के चिकित्सक आज वर्तमान समय में भी पूरी तरह से परंपरागत चिकित्सा पद्धति देशज ज्ञान के आधार पर जंगली पेड़-पौधों व छाल के जड़ी-बूटियों के व देवी-देवता के पूजा-पाठ ईश्वरी आराधना व झाड़-फूक के ऊपर पूरी तरह से निर्भर होते हैं। बैगा आदिवासी समुदाय लोग यदि बीमार पड़ते है तो सबसे पहले अपने गाँव के चिकित्सक, देवार/ ओझा/ गुनिया के पास जाकर उनसे ही रोगों का चिकित्सा कराते है और वे लोग उस चिकित्सा पद्धति से पूरी तरह से ठीक भी हो जाते है। बैगा आदिवासी समुदाय के लोगों का विश्वास है कि हमारे बीमारी को हमारे गाँव के चिकित्सक /देवार/ ओझा/ गुनिया ही ठीक कर सकता है। गाँव के चिकित्सक देवार / गुनिया लोग सबसे पहले उनके बीमारी का कारण, बीमारी की पहचान करने का प्रयास किया जाता है उसके बाद ही बीमारी के अनुसार ही रोगी को जंगली पेड़-पौधों के जड़ी-बूटी एवं झाड़-फूक किया जाता है। इस विधि से भी ठीक नहीं होने की स्थिति में फिर देवी-देवता के पूजा-पाठ ईश्वरी आराधना करने पर कई तरह के बीमारी ठीक हो जाती है। ऐसा मानना गाँव के मुख्य चिकित्सक / देवार/ गुनिया/ ओझा का कहना हैं। बैगा आदिवासी समुदाय के लोग बहुत से बीमारी के कारण अपने घर के देवी-देवता या गाँव के देवी-देवता के रूठना या जादू-टोना का कारण मानते है। लेनिक मुझे ऐसा लागता है एक शोधार्थी होने के नाते बैगा आदिवासी समुदाय में जो बीमारी का कारण है वह अत्यधिक महुआ फूल के दारू पीना, उनके घरों के आस-पास की सफा-सफाई एवं उत्तम पेयजल की व्यवस्था नही होना और अपर्याप्त पोषण की कमी होने के कारण अत्यधिकतर बैगा आदिवासी समुदाय के लोग बीमार पड़ते हैं। बैगा आदिवासी समुदाय आज वर्तमान समय में भी शारीरिक बीमारियों के समस्याओं के लिए हॉस्पिटल नहीं जाते है जबकि भारत सरकार के द्वारा बैगा आदिवासी को कई योजना के अंतर्गत अनुदान में कुछ पैसे भी मुहैया कराया जाता है। इस अध्ययन में बैगा आदिवासी समुदाय के सामान्य बीमारियों से संबंधित विकारों का आंकड़े एकत्रित किया गया और उसका विश्लेषण कार्य किया जा रहा हैं। इस विषय में शोध करने से पता चला है कि बैगा आदिवासी समुदाय अपने सामान्य बीमारियों से संबंधित विकारों के लिए अपने गाँव के चिकित्सक देवार / गुनिया / ओझा के पास जाते है। गांव के मुख्य चिकित्सक पूरी तरह से परंपरागत देशज, के आधार से जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटी, देवी-देवता के पूजा-पाठ ईश्वरी आराधना एवं झाड़-फूक से ठीक करने का प्रयास किया जाता हैं। बैगा आदिवासी समुदायों के चिकित्सक के द्वारा उपयोग की जाने वाले जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटी व छालों के पेड़-पौधे को मध्य- प्रदेश सरकार को संज्ञान में लेना चाहिए एवं उन औषधि पेड़-पौधे को सरकार द्वारा संरक्षण कराने की अति आवश्यक है नही तो कुछ समय पश्चात उन औषधि पेड़-पौधे विलुप्त होने की कगार पर है इस वजह के उन पेड़-पौधे की संरक्षण करना आवश्यक हैं।

संदर्भ सूची:-

- एल्विन, वेरियर. (1932). दी बैगा. आक्सफोर्ड : विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- Jadhv,Dinesh.(2008). Medicinal plants of Madhya Pradesh & Chhattisgarh. Delhi: Daya publishing house.
- ब्रहा वर्चस . (2014). आयुर्वेद का प्राण वनौषधि विज्ञान. मथुरा: युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट.
- Jora lemon, Donald. (2017). Exploring Medical Anthropology. New York. Routledge.
- निरगुणे, वसन्त. (2018). विलुप्त होती जनजातीय गुदना प्रथा.भोपाल: इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय & अगम कला प्रकाशन दिल्ली.
- Ahirwar, R.K. (2017). Ethno medicinal Investigations among the Baiga tribes, district Anuppur, Madhya Pradesh India. Vol.59.Nelumbo.
- Ahirwar, R.K. (2015). Indigenous Knowledge of Traditional Magic-Religious Beliefs Plants of District Anuppur, Madhya Pradesh India.
- Kapale, Rupesh. (2012). Ethno medicinal Plants used by Baiga Tribal's in Amarkantak Meikal Forest of Madhya Pradesh, India. Bulletin of Environment, Pharmacology & life Sciences, vol,1 Issuse-4.
- Kumar, K. Anil. (2006). Ethno-medicine, indigenous healers and disease healing practices among the Kolam of Adilabad district of Andhra Pradesh. Journal of social anthropology, vol.3No.1 (june-2006): 75-88.
- श्रीवास्तव, लोकेश & रानी ऋतु . (2010). जनजातीय स्वास्थ्य . नई दिल्ली : यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन.

वंचित स्त्रियों का संसार- 'लालटेन बाज़ार'

अनुराधा[1]

सारांश

स्त्रियों की वंचना का इतिहास बहुत पुराना व विस्तृत है। समय की गति के साथ, युग परिवर्तन के सापेक्ष संघर्षशील स्त्रियों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना का विकास हुआ। स्त्रियों में चेतना के विस्तार हेतु आधुनिक साहित्य ने अपनी महती भूमिका अदा की, साथ ही स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने व अपनी व्यथा-कथा को कहने का अवसर भी दिया। इन अवसरों को ग्रहण कर साहित्य जगत में स्त्री कथाकारों की एक नई परंपरा देखने को मिली। इसी परंपरा से उपजी कथाकार अनामिका ने वैश्यों के जीवन को आधार बनाकर 'लालटेन बाजार' उपन्यास की रचना की। उपन्यास में लेखिका ने समाज के इस वर्ग के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण का सूत्रपात किया जिसमें गणिकाओं के अतिरिक्त स्त्री जीवन के विविध स्तरों का मार्मिक व यथार्थ चित्रण किया गया है। लेखिका का स्पष्ट मानना है कि स्त्रियों का शोषण पुरुष नहीं करता अपितु उनका शोषण पितृसत्तात्मक व्यवस्था करती है जिससे स्त्री व पुरुष दोनों सामान रूप में ग्रसित दिखते हैं। स्त्री-पुरुष का सामंजस्य ही दोनों को प्रगति के मार्ग पर लाता है। एक-दूसरे के विरुद्ध होकर दोनों की ही प्रगति व शांति अवरुद्ध होती है। देखा जाए तो समाज में स्त्री की मर्यादा सदैव पुरुष तय करता है किंतु पुरुष की मर्यादा तय करने वाला समाज में कोई नहीं होता। ऐसे ही कई गंभीर प्रश्नों को लेखिका अपनी कृति में दमखम के साथ उठाती हैं, साथ ही स्त्री जीवन के सभी पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डालती हैं।

वंचित स्त्रियों का संसार- 'लालटेन बाज़ार'

आधुनिक युग के प्रारंभ होने के पश्चात् ही समाज में परिवर्तन आया है। जहाँ युग बदला, वहीं धीरे-धीरे मानवीय मूल्य भी परिवर्तित होने लगे जिससे स्त्रियों के जीवन में नये-नये सरोकारों का समावेश हुआ। इस कारण साहित्य में भी स्त्री की उपस्थिति को दर्ज किया जाने लगा। इस घटना को कई पुरुष-स्त्री कथाकारों ने स्त्री को स्त्री के नजरिये से देखने-परखने और उनकी समस्याओं से जूझने की कोशिश की। किंतु कई बार इस प्रकार की कोशिश में स्त्री की परंपरागत छवि पर लांछन भी लगा। और तो और कभी-कभी तो स्त्रियों की आँखों में पुरुष से सुरक्षा मांगते हुए बेबसी और लाचारी भी दिखाई दी। ऐसे में भारत में आज भी स्त्री, चाहे वह शिक्षित हो या अनपढ़, पुरुष की भांति उसे न तो विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है न राय देने की। आत्म निर्णय के अधिकारों से तो स्त्रियों को कोसों नहीं हजारों मील दूर रखा जाता हैं। किंतु इस दौर की स्त्री कथाकारों की परंपरा और रचना प्रक्रिया की विशिष्टता उनके लेखन में समन्वित होकर पात्रों के व्यक्तित्व का सटीक चित्रण दर्शाती हैं। स्त्री कथाकारों की अपनी मान्यता है कि बाहर की विस्तृत दुनिया के साथ लेखक के भीतर अपनी

[1] पी-एच.डी (हिंदी विभाग), राजीव गाँधी विश्वविद्यालय रोनो हिल, अरुणाचल प्रदेश
मोबाइल नंबर-9834406486 ईमेल- anuradha.du91@gmail.com

जमीन और अपना आकाश होता है, जो भिन्न संसार होता है। जिससे कई बार बाहर जो कुछ घटित हो रहा होता है वह इतना अधिक कष्टदायक होता है कि वह सहसा भीतर बैठे लेखन के माध्यम से फूट पड़ता है। इस व्यथा की स्थिति में कोई प्रसंग, कोई क्षण या कोई समूची घटना हो सकती है, किंतु इतना निश्चित है कि एक सच्चा लेखक भीतर और बाहर की इन दो सर्वथा भिन्न दुनियाओं में जीता मरता है। दोनों में जो हलचल होती है, वही उसका भोगा हुआ यथार्थ बनकर प्रकट होता है। संभवतः इसी कारण समाज स्त्री कथाकारों की लेखन में छुपे रचना अंर्तप्रक्रियाओं को गहराई से देखता है। इस संदर्भ में **डॉ. श्यामाचरण दुबे मानते हैं कि "सच तो यह है कि लेखन और उसके परिवेश के सावयवी संबंध होते हैं, वह सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से बहुत कुछ ग्रहण करता है और साथ ही थोड़े बहुत अंशों में उन्हें प्रभावित और परिवर्तित भी करता है। यदि लेखक अपने आपको व्यापक सामाजिक संदर्भ से काट लेता है तो उसकी रचना में कला भले ही रहे, जीवन का स्पंदन नहीं होता।"**[1]

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय परिवेश में अनेक परिवर्तन हुए हैं। स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों ने अपनी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में स्त्री को आधार बनाकर साहित्य सृजन किया है, जहाँ कथाओं में स्त्री और पुरुष को समान धरातल पर रखा गया है। यह कहना ज्यादा सटीक और सार्थक है कि कथाकार केवल साहित्य सृजन करता है और समाज को दर्पण दिखाता है। इसके बाद समाज द्वारा उसे स्त्री पुरुष के खाके में ढाला जाता है। हिंदी साहित्य में ऐसे अनेकों रचनाकार हैं जिनकी लेखनी ने समाज की कुरीतियों को समाप्त करके साफ सुथरे समाज की नींव रखी है। समकालीन स्त्री लेखन में पुरुष वर्चस्व के प्रति रोष, संघर्ष एवं स्त्री अस्मिता की स्थापना का मोह दिखाई देता है जो स्त्री को वस्तु और देवी से मुक्त करके संवेदनशील मानव के रूप में स्थापित करने की कोशिश करते दिखाई दे रही हैं। इन लेखिकाओं में मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, सुधा अरोड़ा, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, अनामिका, गीतांजली श्री, वंदना राग, अलका सरावगी और मनीषा कुलश्रेष्ठ आदि प्रमुख हैं।

समकालीन लेखन में स्त्री लेखिकाओं की एक लंबी पंक्ति हैं, जो साहित्य की अलग अलग विधाओं में लेखन कर रही हैं। इन सभी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में स्त्री को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में गढ़ने का प्रयास किया है। उपन्यास विधा में इन लेखिकाओं ने अपनी स्त्री पात्रों को मुखरता प्रदान की हैं जो समाज में दीन-हीन स्त्री की छवि को तोड़ने की पुरजोर कोशिश करती नज़र आती हैं। **डॉ. वैशाली देशपांडे के अनुसार- "महिला उपन्यासकारों ने अपने साहित्य में नारी की विविध समस्याओं को स्वर प्रदान किया है। पुरुष प्रधान दृष्टि से आगे जाकर परंपरा एवं रूढ़ियों को तोड़ती, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती तथा अपने संघर्ष में सफल होकर अपने अनुरूप जीवन व्यतीत करनेवाली नारी आधुनिक महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में सशक्त रूप में अंकित हुई है।"**[2] प्राचीनकाल से ही भारत में पितृसत्तात्मक वर्चस्व रहा है। जिसके कारण समाज में धर्म, वर्ग, जाति और वर्ण के आधार पर स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मान लिया गया, तभी से स्त्री असमानता का मूल समाज में बना हुआ है। किंतु भारतीय स्त्री के संदर्भ में यह बात प्रचलित है कि वह अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं व तर्कों से नहीं सोचती क्योंकि पुरुष

प्रधान समाज में पालन पोषण होने के कारण स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के पीछे चलती ही दिखाई पड़ती हैं। स्त्री अपनी इच्छा, चाह और अधिकारों के प्रति सजग होने के बावजूद भी समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाकर अस्तित्वहीन जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। देखा जाएँ तो आज भी समाज में व्याप्त दुर्जन लोगों की सोच ओछी बनी हुई है साथ ही इनका मानना है कि संसार का विस्तार स्त्री के शोषण और पुरुष के वर्चस्व पर आधारित है। किंतु ऐसा नहीं है, इस समाज में केवल दुर्जन पुरुष ही नहीं अपितु अच्छे व प्रेमी पुरुष भी मौजूद हैं जो पिता, भाई, पति, मित्र या अन्य रूपों में स्त्री के आसपास रहते हैं और उसे स्वावलंबी बनाते हैं। जो स्त्री का शोषण नहीं करते बल्कि उसके अधिकारों के प्रति उसे सजग करते हुए सलफता के पायदान तक पहुंचाते हैं।

वर्तमान स्त्री लेखन में अनामिका एक ऐसी ही रचनाकार हैं जिन्होंने अपने कथा लेखन में इतिहास के उन दबे पन्नों को परत दर परत खोला है जिनमें स्त्री के देशकाल और विसंगतियों को प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। वैसे अनामिका के समग्र उपन्यासों की बात करें तो शायद सारे पहलुओं पर दृष्टि केन्द्रित करना असंभव है। इसी विचार को ध्यान में रखकर उनके एक उपन्यास के संपूर्ण पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। उनका हाल ही में प्रकाशित उपन्यास 'लालटेन बाज़ार' स्त्रियों की स्थिति को लेकर अपने विशिष्ट कलेवर के कारण काफी चर्चा में रहा। अध्ययन से ज्ञात होता है कि अनामिका ने अपने उपन्यास 'लालटेन बाज़ार' में स्त्रियों की मनोस्थिति, वर्ग और उनके जीवन के बिखरे व्यथाओं को छुआ और पिरोया है जहां स्त्रियों के शब्दों में मर्म और बेचारगी को आसानी से देखा जा सकता है। उपन्यास के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि स्त्रियों का शोषण पुरुष नहीं अपितु पितृसत्तात्मक विचारधारा करती है। पितृसत्तात्मक विचारधारा का प्रभाव स्त्री-पुरुष दोनों पर सामान रूप में हो सकता है। स्त्री शोषण के विरुद्ध ऐसे पुरुष पात्र भी हैं जिन्होंने स्त्रियों को हर कदम पर स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाया है। जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते हैं उसी प्रकार समाज में भी अच्छे और बुरे दोनों तरह के लोग रहते हैं। आधुनिक काल में स्त्री शोषण कमतर हुये हैं, क्योंकि स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिये कलम और कागज को अपना हथियार बना लिया है। **उपन्यास की भूमिका में अनामिका ने स्वयं लिखा है- "यह एक टूटा सा बायस्कोप है- कथा नहीं, उपन्यास नहीं। आप इसे पढ़ नहीं सकते, बाँच नहीं सकते, सुन नहीं सकते, सिर्फ देख सकते हैं। इसलिए शास्त्रीय पाठकों, श्रोताओं- जरा बाये हो जाइए। रास्ता खाली हो तो मैं अपनी दुनिया बैठाऊँ और दर्शन उगाहूँ। हर चरित्र एक खिड़की है- ढक्कन वाली खिड़की।"**[3]

अनामिका के उपन्यास 'लालटेन बाज़ार' (2019) की शुरुआत ही स्त्री-पुरुष के असंतुलित संबंधों की स्थिति से हुई है। वैसे देखा जाएँ तो 'लालटेन बाज़ार' अनामिका का पहला उपन्यास है जो कि अब 2019 में पुनः नये नाम के साथ प्रकाशित हुआ है। इससे पहले यह उपन्यास 1983 में 'पर कौन सुनेगा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। यदि उपन्यास के शीर्षक के विषय में बात की जाएँ तो मान लेते हैं कि दोनों शीर्षक उपन्यास के कथावस्तु को परिभाषित करते हैं किंतु उपन्यास के शीर्षक 'पर कौन सुनेगा' उतना सारगर्भित शीर्षक नहीं लगता है। इस शीर्षक को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानो जैसे संपूर्ण उपन्यास में लोग

अपने दुःख और व्यथा को ईश्वर तक पहुंचाने में लगे हुए हैं किंतु परमात्मा उनकी बातों को सुनकर अनदेखा कर रहे हैं। जबकि उपन्यास में ऐसा कोई प्रसंग नहीं हैं बल्कि इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में कोठे की उन तमाम स्त्रियों की व्यथा है जो किसी परिस्थिति की शिकार बनाकर कोठे पर लायी गयी हैं। कोठा होने के कारण जगह का नाम पड़ा- 'लालटेन बाज़ार'!

उपन्यास का नया शीर्षक 'लालटेन बाज़ार' इन स्त्रियों के जीवन के संत्रास के इर्द-गिर्द की कथा को उजागर करता है किंतु ऐसा बिल्कुल नहीं है कि इस उपन्यास में पुरुष पात्रों की मौजूदगी नहीं हैं। बल्कि 'लालटेन बाज़ार' उपन्यास में अनेक पुरुष पात्र भी हैं जो इन स्त्रियों के सुख के तो नहीं लेकिन दुःख के साथी अवश्य बने हैं। इन पुरुष पात्रों ने समाज में स्त्री को केवल मनुष्य समझकर उसके दुःख और दर्द को संजोया और महसूस किया है। तभी तो कथाकार ने अपने उपन्यास को एक नए आवरण चित्र और नये शीर्षक के साथ नाम दिया- 'लालटेन बाज़ार'! इसी बाज़ार में तो सभी पात्र मिलते बिछुड़ते हैं और फिर मिलते हैं। अर्थात 'लालटेन बाज़ार' इस उपन्यास का केंद्र है जहाँ से कोठे की स्त्रियों की रोजमर्रा की यात्रा आरंभ होती है और यहाँ के घर और गलियां संघर्ष, प्रेम, अस्मिता और व्यथाओं का मिलाजुला रूप बयाँ करती हैं। यहाँ की स्त्रियाँ वंचित जीवन जीने पर विवश हैं लेकिन फिर भी उम्मीद की कस्ती पर सवार होकर सपनों को जीने के लिये प्रयासरत है।

मानव जीवन की गहन जटिलताओं को अनामिका ने 'लालटेन बाज़ार' उपन्यास में चित्रित किया है और उन्होंने 1977 में हुई आपातकाल क्षति की पृष्ठभूमि को लेकर भी विस्तार से लिखा है। ऐसा नहीं है कि कथाकार ने इस उपन्यास में केवल आपातकाल के दौर का ही जिक्र किया है, बल्कि उस दौरान घायल और जान गँवाते हुए लोगों के मानवीय जीवन के उठा पतोह का मार्मिक चित्रण भी किया है। 'लालटेन बाज़ार' में जिन पात्रों को अनामिका ने लिया है वे जीवंत चरित्र हैं जो मानव जीवन के वास्तविक सत्य को उजागर करते हैं। इन सभी पात्रों का चित्रांकन यथार्थ से लिया गया है, जिनकी अपने दुःख, संघर्ष और व्यथाएं हैं। वैसे 'लालटेन बाज़ार' उपन्यास के जरिए अनामिका समाज में स्त्री स्वतंत्रता और मुक्ति की चेतना को ही अभिव्यक्ति प्रदान कर रही हैं। इस उपन्यास में अनेक पात्र हैं किंतु लेखिका ने चार प्रधान पात्रों के माध्यम से संघर्ष की भूमिका को प्रस्तुत किया है, साथ ही कुछ गौण पात्रों को भी लिया है। इनमें अफजल, कृष्णकांत, रुनू, कनक, आलोक मुखोपाध्याय, उमा, सलोनी, मीरा, मालती, सुभाष, टुन्नन आदि का चरित्र-चित्रण बहुत ही प्रभावशाली है। उपन्यास 'लालटेन बाज़ार' में वंचित स्त्रियों के जीवन, उनकी व्यथा और संघर्ष को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में देखा जा सकता है। इस तरह चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह एक सशक्त उपन्यास है जिसमें कथाकार का आशय समाहित है तथा वह पाठक वर्ग को वास्तविक धरातल की कथाओं के जरिए वर्तमान समाज की विभिन्न समस्याओं से रूबरू कराती हैं।

प्राचीन व्यवस्था से ही परंपरा के नाम पर समाज ने स्त्री को रूढ़िवादी मानसिकता में जकड़ रखा है जिससे समाज में परंपरा का निर्वहन करने वाली स्त्री को श्रेष्ठ माना जाता है। अर्थात् जो स्त्री पति को परमेश्वर माने और उसकी अवज्ञा न करें किंतु वर्तमान समाज का हाल और बुरा है, इसमें तो स्त्री को केवल वस्तु रूप

में ही देखा जा रहा हैं जिससे स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं बचा। देखा जाएँ तो समाज में स्त्री को जीवित प्राणी न मानकर, उसके लिए वस्तु रूप में प्रतिमान गढ़ दिये गये हैं। कहीं न कहीं समाज के लोग उसे उपभोग की वस्तु ही मान चुके हैं और 'लालटेन बाज़ार' उपन्यास की स्त्री पात्रों की स्थिति लगभग ऐसी ही है। उपन्यास के आरंभ में ही बताया गया है कि शादी के सात बरस बाद ही कांत के बड़े भैया का देहांत हो जाता है जिससे कांत की भौजी के विधवा होते ही परिवार में बँटवारे की चर्चा होने लगती। लेखिका ने उपन्यास में कांत की भौजी के माध्यम से दर्शाया है कि पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री का उस परिवार में अपना कोई सगा-संबंधी नहीं रहता। अर्थात् वह केवल अकेली अबला स्त्री बनकर कर रह जाती है। इस स्थिति को भांपकर ही भौजी ने अपनी डायरी में लिखा था कि, **"घर की दीवारें पक्की होते ही पता चल गया कि आपसी सूत्र कितने कच्चे थे! सारे संबंध एक-एक कर चटक गये! जिस भौजी के आँचल के साये में पूरा घर कभी चमेली के चौरे-सा महका था, आँचल का गोटा के झड़ जाने पर आज उसी भौजी को मुट्ठी भर खुशबू मुहाल करा दी गई है। मुट्ठी भर खुशबू और मुट्ठीभर चावल के सिवा आदमी को चाहिए ही क्या जीने के लिए?"**[4] भौजी के कहे इस कथन से ज्ञात होता है कि भैया की मृत्यु के पश्चात परिवार में लोग भौजी की उपेक्षा करने लगते हैं जो मर्म और व्यथा के भाव उनकी लेखनी में साफ़ झलकाते हैं।

'लालटेन बाज़ार' उपन्यास की कथा कभी वर्तमान में चलती है तो कभी बीते स्मृतियों के बीच तैरने लगती है। इसकी कथा प्रारंभ होती है क्रांतिकारी कृष्णकांत के मुजफ्फरपुर लौटने से। जहाँ आंदोलन में सक्रिय होने के कारण कांत पुलिस के घेरे में आ जाता है जिसके कारण वह जैसे-तैसे जान बचाकर अपने दोस्त अफजल के पास पहुँचता है। अफजल न चाहते हुए भी दोस्ती की खातिर आगे आकर कांत की सहायता करता है किंतु हॉस्टल में रखने से पुलिस को भनक पड़ सकती थी, इसलिए अफजल अपने विद्यार्थी रुनू के यहाँ कांत के रहने की व्यवस्था कर देता है जहाँ उनसे मिलने एक परिचित व्यक्ति लाल अक्सर आता-जाता है। धीरे-धीरे रुनू और लाल के बीच प्रेम पनप जाता है, जिसकी भनक रुनू की माँ को हो जाती है। आगे उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि अफजल भी अपनी विधार्थी रुनू से एकतरफा प्रेम करने लगता है किंतु कांत उसकी यह दशा देखकर उसे समझाने का भरसक प्रयास करता है कि रुनू तुमसे नहीं लाल से प्रेम करती है। अंततः रूनू की माँ लाल और रुनू की शादी तय कर देती है, जो स्वयं पेशे से गणिका का जीवन जी रही है। इन्हीं गणिकाओं के जीवन की अंतरंग कथाओं को बयां करता है अनामिका का उपन्यास 'लालटेन बाज़ार'। लेखिका वर्णित सभी पात्रों के माध्यम से समाज में प्रेम की भावना की स्थापना करने की कोशिश करती हैं, जहाँ प्रेम के विभिन्न रूपों को दर्शाया गया है।

उपन्यास की आगे की कथा में देशसेवा और आन्दोलन की दुहाई देकर लाल गर्भवती रूनू को छोड़कर चला जाता है। वहीं लाल के जाने के पश्चात् कई दिन बाद बात खुलती है कि रूनू से लाल कहकर गया था। यह कह लीजिए कि लाल ने रूनू का शारीरिक उपभोग किया और क्रांति की दुहाई देकर उसके जीवन से चला गया। उपन्यास में यह कथन भी आता है कि लाल ,रूनू के दिमाग में यह भर देता है कि– **"तुम बहुत कोमल हो, रूनू। आकाश में टांगकर तुम्हें तुम्हारी माँ ने पाला है। जीवन की वास्तविकताओं**

का तुम्हें कोई ज्ञान ही नहीं। अंतर्मुखी भी हो। देश सेवा का जो पुण्य-व्रत मैंने लिया है, उसमें तुम कदम-कदम पर बाधा ही बनोगी। तुम्हारा यह अप्सराओं-सा रूप मुझे निठल्ला बना देगा। क्या तुम चाहती हो कि मेरी संभावनाएं चुक जाएँ? नहीं न? तो एक बार मन कड़ा करके जाने दो। यही जीवन है। मिलना-बिछुड़ना, हँसना-रोना, जीत-हार, सही-गलत सब आपस में ऐसे घुले-मिले हैं कि!"[5] लेखिका इस प्रसंग के द्वारा समझाने का प्रयत्न कर रही हैं कि स्त्री का मन बहुत कोमल होता है, वह जिससे भी प्रेम करती है तो टूटकर प्रेम करती है और आजीवन उस प्रेम के बंधन में बंधी रहती है। जैसाकि उपन्यास की पात्र रूनू ने लाल को जाने की अनुमति दी किंतु स्वयं वह अपनी ओर से लाल के प्रेम के बंधन को आजीवन निभाती रही।

कांत के कहने के बावजूद भी रूनू ने स्पष्ट शब्दों में यही कहा कि, **"उनकी सब बातें मुझे मंजूर है। दुबारा ब्याह की बात मंजूर नहीं, दादा! वे मुझे छोड़ तो नहीं गये। मेरी कोख में तो हैं ही। मैं उन्हें पालूँगी। उनकी माँ भी हूँ, कहते थे- तुम मेरी सब कुछ हो।"**[6] लेखिका उपन्यास में इसी बात की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं कि लाल ने रूनू के जीवन को बर्बाद कर दिया। रूनू की माँ ने बड़े संघर्ष से रूनू को पढ़ाया-लिखाया ताकि वह लालटेन बाज़ार की गणिका न बनकर एक अच्छा पारिवारिक जीवन जी सके, किंतु आज लाल के कारण गर्भवती रूनू उसी जीवन को जीने के लिए अभिशप्त है। इन तमाम स्थितियों को देखकर भी अफ़ज़ल रूनू से विवाह करने लिए तैयार है। किंतु रूनू अभी भी लाल के छलावे को प्रेम समझ कर अपने गर्भ के बच्चे के साथ नितांत अकेले जीवन जीना चाहती है। इस उपन्यास में लेखिका ने रूनू के माध्यम से एक प्रेमिका की ऐसी भावभूमि तैयार की है जो शारीरिक आकर्षण से दूर केवल प्रेम में आस्था लगाये बैठी है। वहीं लाल को शारीरिक आकर्षण के प्रेम में बंधा प्रेमी के रूप में दिखाया है जो शारीरिक उपभोग के बाद ही देश के प्रति सेवा भाव जगा पाता है।

'लालटेन बाज़ार' में प्रेम के अलग-अलग पक्ष दिखते हैं। जहाँ कई तरह का प्रेम पनपता है और अनेक तरह के प्रेमी दिखते हैं। वस्तुतः देखा जाएँ तो प्रेम का कोई एक स्वरूप नहीं है। वैसे भी इस उपन्यास में सभी पात्रों को भिन्न भिन्न परिवेश और परिस्थितियों में प्रेम होता है। जहाँ पढाई के दौरान कृष्णकांत को कनक से प्रेम हो जाता है किंतु प्रेम के बाद लोग विवाह के बंधन में बांध जाएं यह भारतीय समाज में बड़ी जटिलता का विषय है। कृष्णकांत के साथ भी वही होता है, कनक के परिवार वाले विवाह करने से मना कर देते हैं। दूसरी ओर कोठे की विसंगतियों से बचाकर रूनू की माँ ने उसे पढ़ाया-लिखाया। ताकि वह इस लाल बाज़ार से बाहर जाकर अपना जीवन जी सकें। लेकिन क्या करें? प्रेम जो न कराये। आख़िरकार लाल के प्रेम ने रूनू को भी लाल बाज़ार के गुमनाम गली का हिस्सा बनने पर विवश कर दिया।

उपन्यास के वर्तमान में रूनू की बेटी मीरा और आलोक एक दूसरे से प्रेम करते हैं, किंतु परिवार की असहमति के कारण आलोक और मीरा की शादी नहीं हो पाती है। बाद में मीरा की शादी सुभाष से हो जाती है जहाँ विवाह के पश्चात् टुन्नन के गुप्त प्रेम की परतें धीरे-धीरे समाज के सामने खुलने लगती हैं। टुन्नन के प्रेम प्रसंग को जानकर मीरा के ससुराल में हो-हल्ला मच जाता है जिसका अंत मीरा के घर छोड़ने के बाद ही

संभव हो पाता है। उपन्यास में कांत और मीरा के प्रेम को भी दर्शाया गया है जो वासना और शरीर से दूर मन में पलता है। अपनी पुत्री की मृत्यु के पश्चात कांत को मीरा में सलोनी की झलक दिखाई देती है। वहीं अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् मीरा अपना सामान लेकर कृष्णकांत के यहाँ रहने आ जाती है किंतु कांत के परिवार को यह स्थिति अयोग्य लगती है। अतएव वह कांत के घर को छोड़कर बिना कहें, कहीं और चली जाती है। जिससे कांत आहत हो जाता है और दुःखी होकर इतना ही कहता है कि- **"मीरा मेरी प्रेरणा है, मेरी पूजा, मेरी मुक्ति का माध्यम।"**[7] लेखिका ने उपन्यास में कांत के प्रेम में वात्सल्य को दर्शाया है जिसे अपनी पुत्री के मरने के पश्चात मीरा में सलोनी दिखने लगती है।

उपन्यास में देखते हैं कि मीरा सारे रिश्तों को साथ लेकर चलने की कोशिश करती है किंतु उसे चारों ओर से विषम परिस्थितियाँ जकड़ लेती हैं जिसके बाद वह तमाम तरह की प्रतिकूल स्थितियों को आंख मूंदकर सहती रहती है। कभी सर झुका कर, कभी प्रतिकार के साथ, लेकिन अनुकूल स्थिति आते ही उसमें साहस का संचार होता है और वह अपने को पुनर्परिभाषित करने के लिये घर के बाहर कदम रखती है। इससे मीरा को आभास होता है कि **"सारी दुनिया उसका घर थी। किसी की आँख के आँसुओं में कांत की ही प्रतिच्छाया।।। हर आँख अब तो मंदिर थी, हर आँसू अमृत।।।और आँसुओं की राह कहीं खत्म तो नहीं होती!"**[8] लेखिका ने इस उपन्यास में स्त्री के जीवन गाथा के विभिन्न पक्षों को विभिन्न स्त्रियों की कथाओं द्वारा सूक्ष्म रूप से उजागर करने का प्रयत्न किया है। जहाँ कांत के जरिए स्त्री की कथावस्तु और स्त्री की यथास्थिति से पुनर्परिभाषित तक की कहानी को बयाँ किया गया है जिसमें कांत ने अपनी पुत्री सलोनी की मृत्यु का भी जिक्र किया है।

लेखिका ने मीरा और रूनू के माध्यम से कोठे की गलियों की एक-एक घटना पर अपनी पैनी नजर गड़ा रखी हैं, अर्थात् इन घटनाओं के जरिए लेखिका गणिकाओं के मर्म और व्यथा को समाज से रूबरू कराती हैं। मीरा को अपने पिता के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है और पिता के बारे में माँ से पूछने पर उसकी माँ चुप्पी साध लेती है। गली-मुहल्ले के लोग मीरा की माँ के बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं। उपन्यास में पान की दुकान का एक प्रसंग हैं जिसके बारे में मीरा जानती और अनुभव भी करती है कि पान की दुकानों पर लोग खड़े होकर अश्लील टीका-टिप्पणी करते हैं। वह सोचती है कि हमें यह मुहल्ला छोड़कर तथाकथित सभ्य लोगों के बीच जाकर रहना चाहिए किंतु समस्या यह है कि उन्हें कोई मकान देने के लिए तैयार नहीं है।

आखिरकार उसकी माँ ने मन कड़ा करके कह ही दिया- **"आखिरकार यह पलायन क्यों? दुनिया के किस कोने में भेडिये नहीं। नंगे भेड़ियों में रहो या नकाबपोशों में। फ़र्क ही क्या है? दांत हैं तो चुभेंगे ही। चमड़ी ही मोटी करनी होगी। औरत के खून में पल रहे खरहों के पंजे जब तक मजबूत नहीं होंगे, भेड़ियों की आँखें हमेशा ऐसे ही दमकेंगी।"**[9] उपन्यास में मीरा के मार्मिक पक्षों को भी प्रस्तुत किया गया हैं जहाँ कोठे की कवायदे कहते हुये श्यामल सरकार अपने पुत्र आलोक की शादी मीरा से नहीं होने देते, और जोर जबरदस्ती से मीरा की शादी अपने मुनीम के बेटे सुभाष से करा देते हैं। ऐसी अनेक कथाएँ कहती हैं 'लालटेन बाज़ार' की कोठियां, जहाँ लोग आये, प्रसन्नचित मुद्रा में वादों और कसमों को लेकर

वापिस आने का वादा तो किया लेकिन फिर उन गुमनाम गलियों में दुबारा नहीं लौटें। उपन्यास में सारी स्त्रियों के कोठे पर आने की अलग-अलग विसंगतियां हैं। लेकिन लाने वालों की फेरहिस्त में पुरुषों की जमात ही आगे दिखती है।

उपन्यासकार ने वंचित स्त्रियों के जीवन की विवशता एवं उनकी त्रासद स्थिति का वर्णन 'लालटेन बाज़ार' में बाखूबी किया है जिसमें स्त्रियों के परिवेश और शोषण की वास्तविक कथा को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में वृद्धा स्त्री जलेबा बुआ की कथा को भी बताया गया है जो लखनऊ के किसी बड़े घराने से ताल्लुक रखती हैं किंतु बाल्यावस्था में ही वह जीवन की दुविधाओं और व्यथाओं की शिकार हो जाती हैं, और जब होश संभाला तब वह मासूमाजान बनाकर कोठे पर बैठा दी गयीं। 'लालटेन बाज़ार' गणिकाओं का मुहल्ला है जहाँ शाम की महफ़िलों में सभ्य लोग आते हैं, अपना मनोरंजन करते हैं किंतु दिन के उजाले में यही सब लोग लालटेन बाज़ार की ओर ताकने से भी बचते हैं और मुंह फेर हाय तौबा मचाते हुए बदनाम गलियां बोलते हुए निकल जाते हैं। वैसे भी स्त्री की नियति तो समाज ही बनाते आ रहा है, तभी तो समाज ने मीरा और टुन्नन को लेकर बातें बनाकर उसके चरित्र पर लांछन लगा दिया। फलस्वरूप सास और ननदें मीरा को खरी-खोटी सुनाने लगीं। इस बीच जब साहब के बेटे की शादी में जाने का अवसर आया तब मीरा ने अपने सारे गहनें ननदों को पहना दिया तभी सास कड़ककर बोलीं- **"क्या वहां वियोगिनी बनकर चलने का इरादा है? दस लोग देखेंगे तो यही कहेंगे न कि बहू के सारे गहने-कपड़े छीनकर उसे गृहस्थी में झोंक डाला- अरे, झूठी सहानुभूति बटोरने के तेरे संस्कार कब जायेंगे? जाओ, अपने ये नखरे उसी मुहल्ले में छोड़ आओ, यह शरीफों की बस्ती है। फिर मेरी बेटियाँ क्या सोने के पत्तरों के इन्हीं देहाती गहनों की मुहताज हैं? इनके लिए मैंने नये-नये फैशन के वज़नी गहने बनवा रखे हैं। छिनाल की बेटी, ये सँभाल अपने टोटने।"**[10]

अनामिका ने सभ्यता के मानचित्र पर स्त्री जीवन की अनेक विसंगतियों और व्यथाओं को प्रस्तुत किया है। वे पुरुष की उपभोगी प्रवृति को सहन नहीं करतीं किंतु कहीं-कहीं प्रेमी पुरुषों की ओर स्त्रियों का आकर्षित होना स्वाभाविक मानती हैं। 'लालटेन बाज़ार' की कथा सिर्फ भावों के धरातल पर ही नहीं घटित होती अपितु उसकी पृष्ठभूमि कोठों के इतिहास की एक झलक आँखों के सामने ला देती है। जहाँ न जाने कितनी मीरा, रूनू और जलेबा बुआ जैसी स्त्रियों का मान-सम्मान दांव पर लगा है। कभी प्रेम तो कभी परिणय सूत्र के नाम पर लोग स्त्रियों की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हैं। इन लोगों की रक्षा के लिये प्रथाएं, समाज का वर्चस्व और राज्यसत्ता आदि सभी व्यवस्थाएँ होती हैं। अकेली तो केवल स्त्रियाँ होती हैं जो अपने लिये लड़ने की जी तोड़ कोशिश करते हुये इस संसार से विदा हो जाती हैं।

अनामिका के 'लालटेन बाजार' का कथानक वर्तमान और गुजरी स्मृतियों का मिलाजुला रूप है जो स्त्रियों के द्वंद्व और भावों को समेटे हुए है। दूसरी ओर स्त्रियों के अंतर्द्वन्द्व और बाहरी संघर्ष के माध्यम से व्यक्तिगत मानवीय विशिष्टताओं का धरातल बना हुआ है। किंतु 'लालटेन बाज़ार' में कुछ पुरुष पात्र ऐसे भी हैं जो अपनेपन और उदात्त स्वभाव के हैं जो स्त्रियों के मन की दुविधा को बखूबी समझ लेते हैं। इस उपन्यास

में स्त्री जीवन के विभिन्न व्यथाओं, दुःखों और सामाजिक पक्षों को दर्शाया गया है। अर्थात् वंचित स्त्रियाँ केवल गणिकाएँ नहीं होती अपितु समाज के प्रत्येक वर्ग, धर्म और जाति की स्त्रियाँ अपने अधिकारों से वंचित जीवन जी रही हैं। 'लालटेन बाज़ार' में वंचित स्त्री-संघर्ष के साक्ष्य प्रत्यक्ष दिखते हैं जो समकालीन माने जानेवाले प्रश्नों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य देते हैं।

निष्कर्षत: अनामिका के उपन्यास "लालटेन बाज़ार" में मीरा का अपने ससुराल में उपेक्षा और यंत्रणा सहने और ससुराल से वापस लौटने की त्रास से भरी कहानी को बयाँ किया गया है। लालटेन बाज़ार' की गलियों की रौनक और गणिकाओं के गाने-बजाने के शोर में भी मर्म छुपा है जो कभी-कभी जलेबा बुआ जैसे पात्रों के रूप में उभर कर आता है और उनके दुःखों को व्यक्त करने का माध्यम बनता है। वर्तमान समय में 'लालटेन बाज़ार' केवल बिहार प्रान्त में ही नहीं बल्कि भारत के अनेक प्रदेशों में मिल जाएंगे जहाँ आज भी काल और नियति को चकमा देकर ये गणिकाएं बेहतर जीवन जीने के लिए प्रयासरत हैं। लेखिका ने अपने उपन्यास में इस ओर भी संकेत किया है कि स्त्री की मुक्ति तभी संभव है, जब देश की व्यवस्थाओं में परिवर्तन होगा और नयी व्यवस्था में नयी नैतिकता और नियम स्त्री के हक़ में लाया जाए। इसके बाद ही स्त्री की मुक्ति और अस्तित्व में नया आयाम आ सकेगा। तभी मीरा, जलेबा बुआ और रूनू आदि जैसी अनेक स्त्रियाँ प्रेम और त्याग के नाम पर 'लाल बाजार' के मुहल्ले में फंसने से बच पाएंगी और अपनी इच्छा के अनुसार स्वछंदता से जीवन जी सकेंगी।

संदर्भ –

[1] दुबे, श्यामचरण. (2008). *परंपरा, इतिहास-बोध और संस्कृति*. नई दिल्ली : राधाकृष्णा प्रकाशन. पृ. सं. 155.

[2] देशपांडे, वैशाली. (2007). *स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार*. कानपुर : विकास प्रकाशन. पृ. सं. 89.

[3] अनामिका, (2019). *लालटेन बाज़ार*. दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़ प्रकाशन. पृ. सं. 9.

[4] वही, पृ. सं.17

[5] वही, पृ. सं. 26

[6] वही, पृ. सं. 26

[7] वही, पृ. सं. 99

[8] वही, पृ. सं. 109

[9] वही, पृ. सं. 80

[10] वही, पृ. सं. 90

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण एवं मनरेगा : एक विवेचना

सुनील कुमार भाष्कर[1]

आज भी हमारे देश में ग्रामीण महिलाएं पुरातनवादी व्यवस्था में जी रही है। इस पुरातनवादी व्यवस्था से छुटकारा दिलाने के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकार प्रदान की जाए, इसी को ध्यान में रखते हुए पिछले कई दशकों से ग्रामीण महिलाओं का उत्पीड़न रोकने व उनके हक दिलाने के बारे में बड़ी संख्या में कानून पारित हुए हैं। अगर पारित कानूनों का सही रूप में पालन होता तो भारत में महिलाओं के साथ भेद-भाव और अत्याचार अब तक खत्म हो जाना था। लेकिन पुरुष प्रधान मानसिकता के चलते यह संभव नहीं हो सका है।

सदियों से पुरुषों द्वारा महिलाओं पर किए गए वर्चस्व और भेद-भाव के कारण महिलाओं की दयनीय होती गई लेकिन समय-समय पर अनेक महापुरुषों एवं संस्थाओं द्वारा महिलाओं को उनके सामाजिक अधिकार दिलाने व सशक्तीकरण के लिए समय-समय पर अनेक सामाजिक आंदोलन हुए, जिससे उनको कुछ सामाजिक अधिकार मिले। ज्ञानोदय काल एवं आधुनिकीकरण के कारण महिलाओं की स्थिति में तो आमूल-चूल परिवर्तन हुए। भारत में स्वतंत्रता के बाद महिला सशक्तीकरण के लिए समय-समय पर महिलाओं से संबंधित विभिन्न कानून एवं योजनाएँ बनायी गई जिससे महिलाओं की स्थिति में अपेक्षित सुधार हुआ।

महिला सशक्तिकरण के बारे में जानने से पहले हमे ये जान लेना चाहिए कि सशक्तिकरण क्या होता है। सशक्तिकरण का तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस क्षमता से है, जिससे उसमें वह योग्यता आ जाती है जिसमें वह अपने जीवन के सभी निर्णय स्वयं ले सके। महिला सशक्तिरण में भी हम उसी क्षमता की बात कर रहे हैं जहाँ महिलाएं परिवार और सामाजिक बंधनों से मुक्त होकर अपने निर्णयो की निर्माता खुद हों। अपनी निजी स्वतंत्रता और स्वयं के फैसले लेने के लिए अधिकार देना ही महिला सश्क्तिकरण है। महिलाओं को उपयुक्त और स्वच्छ पर्यावरण की आवश्यकता है। जिससे वे हर क्षेत्र में खुद का फैसला ले सकें, चाहे वे स्वयं, बच्चे, परिवार, समाज या देश के लिए हो। देश को पूरी तरह विकसित बनाने के लिए और विकास के लक्ष्य को पाने के लिए एक बहुत ही ज़रूरी हथियार के रूप में समय-समय पर सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों द्वारा महिला उत्थान एवं सम्मान के लिए सार्थक प्रयास किये है। मनरेगा उन्हीं सार्थक प्रयासों का एक सफल कदम है। "मनरेगा" ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है

मनरेगा : एक संक्षिप्त परिचय

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून 2005 (मनरेगा) एक क्रांतिकारी और तर्कसंगत परिवर्तन का जीता जागता उदाहरण है। यह क्रांतिकारी बदलाव का सूचक इसलिए है, क्योंकि इस कानून से

[1] शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

गरीब से गरीब व्यक्ति के हाथों को काम मिला है और आर्थिक ताकत दी है जिसमें ग्रामीण महिलाएं ज्यादा लाभान्वित हुई है।

मनरेगा का मुख्य उद्देश्य रोजगार के लिए पूरक अवसर उपलब्ध कराना है। विकास में निरंतरता रखने के लिए राष्ट्रीय संसाधनो के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार मुहैया कराने के लिहास से मनरेगा एक सहयोगात्मक संसाधन है। मनरेगा के तहत किये जाने वाले कार्यों में जल संरक्षण, वृक्षारोपण, भूमि विकास आदि ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित काम है। अनुसूचित जाति, जनजाति, गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले परिवार को सिंचाई सुविधा, वृक्षारोपण, बागबानी, जैसी योजनाओं से संबंधित कार्य सौंपे जाते है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य है कि इसके जरिये लोकतंत्र के सबसे निचले स्तर तक लाभ पहुंचाया जा सके और सरकार के कार्यों में पारदर्शिता और जवाबदेही तय की जा सके। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 देश का एक ऐसा पहला अधिनियम है, जो ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को गांव में ही रोजगार उपलब्ध कराता है। इस योजना का शुभारंभ 2 फरवरी 2016 को देश के 200 जिलों में लागू किया गया। इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के कम से कम एक वयस्क सदस्य को वर्ष में 100 दिनों का शारीरिक श्रम युक्त रोजगार पाने का अधिकार है। वर्ष 2007-2008 में इस योजना का विस्तार 330 जिलों में इसकी लोकप्रियता को देखते हुए अप्रैल 2008 में पूरे देश में लागू कर दिया गया। 2 अक्टूबर 2009 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जयंती के अवसर पर केंद्र सरकार द्वारा इस योजना का नाम बदलकर नरेगा से मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना) कर दिया गया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ-

1. ऐसे परिवारों को स्थानीय ग्राम पंचायत में लिखित या मौखिक रूप से रजिस्ट्रेशन करवाना पड़ता है।
2. ग्रामीण परिवार का कोई भी व्यस्क सदस्य यदि अकुशल श्रम के तहत कार्य करने को इच्छुक है तो वह आवेदन कर सकता है
3. जाँच पड़ताल के पश्चात् ग्राम पंचायत इच्छुक सभी सदस्यों का फोटो युक्त जॉब कार्ड जारी करता है।
4. रोजगार के लिए आवेदन के बाद 15 दिनों के अंदर उसे काम दे दिया जाता है।
5. इस योजना के तहत कम से कम 1/3 भाग महिलाओं को काम दिये जाने की व्यवस्था है।
6. घर से 5 किलोमीटर के आस-पास के क्षेत्रों में ही रोजगार दिया जाता है।
7. कार्य के दौरान कार्यस्थल पर कार्य कर रही महिलाओं के 6 वर्ष या उससे कम उम्र के बच्चों की देखभाल की व्यवस्था की जाती है।
8. मजदूरी कम से कम 150 रू प्रतिदिन हो सकती है , जिसका भुगतान बैंक खातों के जरिए होता है। योजना को बनाने एवं लागू करने में पंचायत की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

ग्रामीण महिला सशक्तिकरण एवं मनरेगा

इस योजना में शेड्यूल II पैरा 6 मनरेगा के अन्तर्गत कहा गया है - कार्य के वितरण में महिलाओं को प्राथमिकता देनी होगी ताकि कम से कम एक प्रकार के लाभ प्राप्त करने वालों में एक तिहाई से अधिक

हिस्सा महिलाओं का हो। ऐसी व्यवस्था रखने का एक मात्र उद्देश्य महिलाओं से सशक्तिकरण को बढ़ावा देना है एवं उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है। महिलाए जैसे ही आत्मनिर्भर हो जाती है पुरूषों पर उनकी निर्भरता कम हो जाती है और वे स्वयं को सशक्त महसूस करती है, समाज में उनकी स्थिति सुदृढ़ होती है एवं उनकी नजरों में स्वयं का आत्मसम्मान बढ़ जाता है। मनरेगा जैसी योजनाएँ न केवल देश से बेरोजगारी हटाने का कार्य कर रही है, वरन ग्रामीण महिलाओं सशक्त व स्वावलम्बी बनाकर उनके अंदर सशक्तिकरण की भावना को भी बढ़ावा दे रही है। महिलाओं की अधिक से अधिक भागीदारी मनरेगा की प्रमुख प्राथमिकता रही है। राष्ट्र भर में योजना के तहत कुल श्रम दिवसों का 48 प्रतिशत काम महिलाओं ने किया जो कि दिशानिर्देश के 33 प्रतिशत से काफी अधिक है। महिलाओं की सम्पूर्ण भारत में भागीदारी दर के साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि इस योजना में महिलाओं की भागीदारी अन्य सभी योजनाओं की तुलना में सबसे अधिक है। मनरेगा ने महिलाओं के लिए काम का एक महत्त्वपूर्ण अवसर प्रदान किया है जो रोजगार उनके सशक्तिकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा हैं। मनरेगा में महिलाओं की भागीदारी की बात की जाए तो वित्तीय वर्ष 2006-07 में महिला रोजगार एवं श्रम दिवस लगभग 40.64 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2007-08 में 42.51 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2008-09 में यह बढ़ कर 47.87 प्रतिशत हो गया। वित्तीय वर्ष 2009-10 में 48,91 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2010-11 में महिला रोजगार एवं श्रम दिवस 4773 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2011-12 में यह बढ़कर 49.33 प्रतिशत हो गया। वित्तीय वर्ष 2012-13 में महिला रोजगार एवं श्रम दिव 51.30 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2013-14 में 52 82 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2014-15 में महिलाओं भागीदारी 54.8 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2015-16 में यह भागीदारी 55.26 रहा है वित्तीय वर्ष 2016-17 में 56.14 प्रतिशत तथा वित्तीय वर्ष 2017-18 में महिलाओं भागीदारी एवं श्रम दिवस 54.67 प्रतिशत रहा। विभिन्न राज्यों में महिलाओं की भागीदारी अलग-अलग रही है। यह केरल में 71 प्रतिशत राजस्थान में 69 प्रतिशत, तमिलनाडु सबसे अधिक 82 प्रतिशत, असम में 31 प्रतिशत, बिहार में 27 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 17 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 15 प्रतिशत हिमाचल प्रदेश में 30 प्रतिशत एवं झारखंड में 27 प्रतिशत रही है।

भारत में मनरेगा की प्रगति यह बताती है कि महिलायें निश्चित रूप से लाभान्वित एवं सशक्त हुई है। आर्थिक स्वावलबन और प्रदत्त कार्य तक पहुँच कर महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर पर सकारात्मक बदलाव आया है। मनरेगा द्वार प्राप्त अपनी मजदूरी को महिलाएँ अपने छोटे ऋणों को चुकाने, बच्चों के स्कूल फीस भरने व स्वास्थ्य-संबंधी खर्चों पर इस्तेमाल करती हुई कुछ बचत भी कर रही हैं। मनरेगा, महिला प्रमुख वाले परिवारों के लिए एक उचित और स्थिर रोजगार है। एक सर्वेक्षण में विधवाओं ने मनरेगा की आय के श्रोत को महत्त्वपूर्ण माना है। अधिकतर महिलाओं का कहना है कि मनरेगा ने उन्हें भूख एवं बिमारी से बचाया है।

मनरेगा अधिनियम के अनुसार महिला एवं पुरुषों को एक समान दर से मजदूरी का प्रावधान है, एवं यह भी अनिवार्यता है कि कार्यस्थल पर कम से कम 33 प्रतिशत महिलाओं का होना आवश्यक है। मनरेगा धर्म व जाति के आधार पर भेद-भाव के बिना सभी लोगों को कार्य करने के समान अवसर प्रदान करने वाली योजना है। केरल एवं आंध्रप्रदेश दो ऐसे राज्य है जहाँ सबसे अधिक महिला श्रमिकों की संख्या दर्ज है। भारत

जैसे विकासीशील देश में जहाँ महिलाओं की भूमिका एवं स्थिति प्रारंभ से ही दयनीय थी आज भी सुधार नहीं पायी है किंतु फिर भी समय-समय पर सरकारी प्रयासों एवं विद्वजनों द्वारा उनकी भलाई एवं सम्मान के लिए सार्थक प्रयास किये है मनरेगा उन्हीं सार्थक प्रयासों एक सफल एवं साकारात्मक कदम है। मनरेगा ने बहुत ही कम समय में बहुत अधिक लोकप्रियता हासिल कर ली है। काम करने की प्रति महिलाओं का रवैया बदला है। एक समान मजदूरी होने के कारण उनके अंदर भी पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चलने की सामर्थ्य आया है। एक रिपोर्ट के अनुसार 15 राज्यों में 33 प्रतिशत से अधिक महिला श्रमिक मनरेगा के तहत कार्य कर रही है जो कि महिलाओं की जागरूकता एवं सशक्तिकरण को दर्शाता है। इसी क्रम में आगे देखते हुए बात करें तो पता चलता है कि महिलाएँ विशेष तौर पर ग्रामीण महिलाएं एक ही समय पर अनेक परेशानियों से जूझती है, जैसे कि गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, अन्याय, बदहाली, और अनगिनत ऐसी परेशानियाँ है। जिनसे उन्हें आए दिन दो चार होना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में वे स्वयं को लाचार महसूस करने लगती है और यदि ऐसी परिस्थितियों में सरकार के द्वारा उन्हें वर्ष में 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जाता है तो वह अपने परिवार एवं पति के साथ मिलकर काफी हद तक स्वयं को आर्थिक, सामाजिक मानसिक रूप से संगठित एवं मजबूत महसूस करती है।

मनरेगा एक वास्तविक पहल है ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण का महिलाओं निजी तौर पर काम तो मिलता है किंतु वह अनियमित होता है, उनका शोषण बहुत अधिक होता है, खतरो से भरपूर कभी-कभी जानलेवा भी होता है लोगों को प्रवजन के लिए भी प्रोत्साहित करता है ऐसी स्थिति में मनरेगा जो कि उन्हें अपने गांव एव घर के आस-पास रोजगार उपलब्ध कराती है। मानकीकृत मजदूरी प्रदान करती है और रोजगार में नियमितता लाती है एवं प्रवजन को भी रोकती है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण अंचलों के लिए मनरेगा एवं सर्वाधिक कुशल योजना है। ग्रामीण क्षेत्रों में एक महिला निजी कार्य करते हुए मात्र 47-48 रूपये प्रति कार्य दिवस कमाती है वहीं मनरेगा के तहत वह औसत दर से कम से कम 100-170 रूपये प्रतिकार्य दिवस कमाती है जो कि निजी कार्यों से कही अधिक है इसी कारण से इस योजना को सभी प्रदेशों में स्वीकार्यता मिल रही है।

मनरेगा के तहत किये जाने वाले कार्य स्थानीय सरकार के द्वारा ग्रामीण जनता को प्रदान किया जाता है एवं सरकारी कार्य होने की वजह से इसमें कार्य के घंटे भी तय है जो कि 7-8 घंटे प्रतिदिन से ज्यादा के नहीं हो सकते है, साथ ही कार्य क्षेत्र में बच्चों के रख-रखाव की व्यवस्था भी की जाती है, जिसमें पांच से अधिक बच्चे जो कि 6 वर्ष से कम के हो, शामिल किये जाते है। सरकारी कार्य होने की वजह से यहाँ श्रमिकों की सुरक्षा का भी पूरा ध्यान रखा जाता है जिसमें आर्थिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की सुरक्षा शामिल है।

इस प्रकार मनरेगा योजना द्वारा महिलाएं जागरूक हो रही है एवं कही न कही पुरूषों के साथ बराबरी का अहसास उनके अंदर जन्म ले रहा है। महिलाएं सामाजिक आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने के साथ-साथ आत्म सम्मान के प्रति सचेत हो रही है और स्वयं के लिए एवं अपने परिवार के भविष्य के लिए इन पैसों का इस्तेमाल कर रही है। इस योजना के माध्यम से महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही

है, शिक्षा के महत्त्व को पहचान रही है और नारी शक्ति को जान रही है। मनरेगा के माध्यम से महिलाएं यदि अकेली है तो भी अपना जीवन यापन करने में सक्षम हो रही है। मनरेगा द्वारा आर्थिक सहयोग मिलने से वे परिवार में निर्णय ले रही है एवं परिवार के अनेक समस्याओं जैसे बच्चों की शिक्षा, छोटे-मोटे ऋण चुकाना, स्वास्थ्य, भोजन और उपभोग आदि से निजात दिला रही है। कुल मिलाकर सम्पूर्ण भारत में सशक्तिकरण की एक लहर सी दौड गई है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों के आकार, प्रकार एवं सोच आदि में भी परिवर्तन आया है। मनरेगा द्वारा पूरे देश का आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक विकास हो रहा है और देश बेरोजगारी के अभिशाप से धीरे-धीरे मुक्त हो रहा है। ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण का सपना साकार हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- महात्मा गाँधी नरेगा समीक्षा II, 2013-14 ग्रामीण विकास मन्त्रालय, नई दिल्ली.
- खेड़ा, और नायक " वूमेन वर्कर्स एण्ड परसेप्शन्स ऑफ द नेशनल रूरल इम्प्लायमेंट गारटी एक्ट.
- कुमावल, ललित, 2004 पंचायती राज एवं वंचित महिला समूहों का उभरता नेतृत्व, नई दिल्ली, पृ.24
- भारत ग्रामीण विकास रिपोर्ट 2012-13 आ॰डी॰एफ॰सी॰रूरल डेवलपमेंट, नई दिल्ली.
- सुदर्शन, रत्ना 2006 " वूमेन एण्ड नरेगा , आई एल ओ रिपोर्ट.
- जंडू नवज्योति, 2008 " इम्पलायमेट गारंटी एण्ड वूमेन्स एम्पावरमेंट इन रूरल इण्डिया'.
- सिंह यू. पी. एवं आर.के. गर्ग 2012 महिला सशक्तिकरण विभिन्न आयाम, नई दिल्ली पृ. 231
- शर्मा, प्रेमनारायण एवं वाणी विनायक, 2011 गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तिकरण, लखनऊ पृ. 45
- कुरुक्षेत्र, जनवरी.2018
- डॉ० नीलम(2015):महिला सशक्तिकरण एवं राष्ट्रिय महिला आयोग, गौतमबुद्ध सेंटर, दिल्ली.
- श्रीवास्तव, संजय(2016):महिला सशक्तिकरण की बदलती तस्वीर, कुरुक्षेत्र, जनवरी.
- शर्मा, प्रेमनारयण झा संजीव कुमार एवं अन्य (2018):महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास, भारत बुक सेंटर,लखन.

ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयंसहायता समूह की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सुनीता चौहान[1]

सारांश

किसी भी राष्ट्र के विकास में समाज के प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग, जाति, समुदाय की सहभागिता महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। विकास की इस अवधारणा में हम महिलाओं की सहभागिता को नजरअंदाज नहीं कर सकते। महिलाओं के विकास के बिना व्यक्ति परिवार और समाज के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। राष्ट्र के विकास में महिलाओं की सहभागिता ने पूरे विश्व के सामने एक मानक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। लेकिन विश्व के गिने-चुने विकसित देशों को छोड़ दें तो बाकी बचे देशों में महिलाओं की भूमिका पुरुषों से कम है। महिलाओं की स्वतंत्रता आज कई सामाजिक-सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक कारणों से आहत है, उनके विकास के अवसर बाधित है, उनकी विकास की प्रक्रिया में भागीदारी अवरुद्ध है आज भी बहुत से देशों में महिलाएं पुरातनवादी व्यवस्था में जी रही है महिलाओं को विकसित देशों की श्रेणी में लाने के लिए एवं पुरातनवादी व्यवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए जाए। महिलाओं के लिए इस प्रयास की प्रक्रिया को ही "महिला सशक्तिकरण" कहते हैं। महिला सशक्तिकरण मौजूदा दौर का सर्वाधिक लोकप्रिय नारा ही नहीं मौजूदा समय की मांग भी है। आज से काफी समय पहले से ही नारी सशक्तिकरण की महत्ता समझते हुए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर प्रयास होते रहे हैं मानवतावादी, बुद्धिजीवियों दार्शनिकों समाज सुधारकों द्वारा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस बात पर जोर दिया गया कि आदर्श विश्व मानव समाज की संस्थापना एकांगी (पुरुष उन्नति मात्र) रूप में संभव नहीं है। प्रत्येक दशा में महिलाओं की उन्नति एवं उसके सम्मान को संबद्धित करना होगा। इस अंतरराष्ट्रीय प्रयास के अलावा स्थानीय तौर पर निर्मित स्वयंसहायता समूहों ने भी महिलाओं के विकास व सशक्तिकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस शोध पत्र में ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयंसहायता समूह की भूमिका को प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द : महिला विकास, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण महिला प्रस्थिति, स्वंयसहायता समूह।

प्रस्तावना-

हमारा देश गांवों का देश है जहां देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ग्रामीण महिलाएं गाँवों में ही निवास करते हुए ग्रामीण अर्थव्यवस्था में योगदान दे रही हैं ज्ञातव्य है कि देश में कृषि

[1] शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.).

संबंधित अधिकांश कार्य जैसे बीज बोना, पौधारोपण, निराई-गुड़ाई व फसल की कटाई आदि कार्य ग्रामीण महिलाओं द्वारा संपादित किए जाने के बावजूद भी उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति चिंता का विषय है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ग्रामीण महिलाओं की स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा था कि भारतीय ग्रामीण महिलाएं न केवल दिन-रात गृह कार्यों को संपादित करने में लगी रहती हैं अपितु घरेलू दासता व हिंसा का शिकार भी होती हैं इसके साथ ही यदि ग्रामीण महिलाएं मजदूरी पर कार्य करने के लिए जाती हैं तो पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करने के बावजूद भी उनको कम मजदूरी प्राप्त होती है। ग्रामीण महिलाओं के पास न कौशल है न दक्षता न शिक्षा न संपत्ति है जिसकी सहायता से वह संगठित और औपचारिक क्षेत्र में रोजगार पा सकें।

सरकारी व गैर-सरकारी स्तर पर महिलाओं की स्थिति सुधारने, उनको सशक्त एवं अधिकार संपन्न बनाने के लिए अनेक रोजगार कार्यक्रमों व योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। इसके अतिरिक्त देश में वर्ष 2001 को "राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण वर्ष" के रूप में मनाने का उद्देश्य भी महिलाओं की क्षमताओं और कौशल विकास करके उन्हें रोजगार प्रदान करके अधिक सशक्त बनाने व उनकी स्थिति में सुधार करना था।

इसी दिशा में कदम बढ़ाते हुए सरकार ने स्वंयसहायता समूह कार्यक्रम का सूत्रपात महिलाओं को रोजगार की दिशा में आगे बढ़ाते हुए सशक्त एवं सबल बनाने हेतु किया। वस्तुतः स्वयंसहायता समूह कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं के लिए वरदान साबित हो रहा है। स्वयंसहायता समूह के जरिए 'लघु वित्त' प्राप्त करके महिलाएं बेरोजगारी के चक्रव्यूह से निकलकर महिला सशक्तिकरण की दिशा में कदम बढ़ा रही हैं। इस कार्यक्रम की वजह से महिलाओं की स्थिति व दशा में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टिकोण से क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

स्वयंसहायता समूह

स्वयंसहायता समूह समरुप ग्रामीण निर्धनों द्वारा स्वेक्षा से गठित एक समूह है जिसमें समूह के सदस्य अपने आप से जितनी भी बचत आसानी से कर सकते हैं उसका अंशदान, उत्पादन, उपभोग अथवा आपातकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ऋण के रूप में देने के लिए तैयार होते हैं। स्वयंसहायता समूह एक जैसी आर्थिक स्थिति वाले ग्रामीण गरीबों का एक छोटा सा समूह होता है जिसमें समूह के लोग स्वेच्छा से नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी राशि बचाते हैं और सामूहिक निधि में योगदान के लिए पारंपरिक रूप से सहायक रहते हैं।

स्वयंसहायता समूह की अवधारणा मूल रूप से 1975 में ग्रामीण बांग्लादेश बैंक प्रोफेसर **मोहम्मद यूनुस** ने विकसित की जिन्हें 2006 में नोबेल शांति पुरस्कार प्रदान किया गया। स्वयंसहायता समूह 10 से 20 निर्धन महिलाओं का ऐसा समूह होता है, जो सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि व समान विचारधारा से संबंधित है और अपनी बचत एवं आर्थिक समृद्धि के लिए स्वैच्छिक रूप से संगठित रहती हैं निश्चित समयांतराल पर इन समूहों को बैंकों से संबंध करके लघु व कुटीर उद्योग, दस्तकारी उद्योग छोटा व्यवसाय या कृषि संबंधित अन्य

व्यवसाय शुरू करने के लिए ऋण प्रदान किया जाता है जिससे ग्रामीण महिलाएं रोजगार पथ पर अग्रसर हो सकें। यद्यपि अहमदाबाद (भारत) में 1974 मैं स्थापित संस्था सेवा (SEWA-Self Employed Women Association) **इला भट्ट** के नेतृत्त्व में स्वयंसहायता समूह की अवधारणा पर काम कर रही है लेकिन औपचारिक एवं व्यवस्थित रूप से स्वयंसहायता समूह को विकसित करने का श्रेय मोहम्मद युनूस को दिया जाता है।

शिवरमन कमेटी की सिपारिशों के आधार पर 1982 में मुंबई मेन राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) की स्थापना की गई। नाबार्ड द्वारा 1986-87 मे स्वयसहायता समूहों को प्रोत्साहन देने हेतु कार्य प्रारंभ किया गया। वर्ष 1992 स्वयंसहायता समूह को देश भर के बैंकों के साथ लिंक कर दिया गया यह सूक्ष्म वित्त की अवधारणा पर काम करने वाले इन समूहों के लिए अहम निर्णय था। भारत में आज लगभग 32 लाख स्वयंसहायता समूहों एवँ सूक्ष्म वित्त को प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

स्वयंसहायता समूह के विकास क्रम

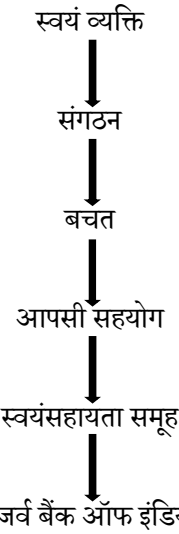

(नाबार्ड/रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, 2010)

कलस्टर

यह आस-पास के गांव में स्थिति 10-20 स्वसहायता समूहों द्वारा बनाई गई एक संस्था है। इस संस्था का मुख्य काम स्वयंसहायता समूह और सहयोग के जरिए समूहों को लंबे समय तक कायम रखना है।

स्वयंसहायता समूह के विकास की अवस्थाएं

क्र.	विकास की अवस्था	समयावधि	प्रमुख कार्य
1	समूह निर्माण से पहले	1-2 महीने	साझेदारी की विधियों से छोटे गांवों में गरीबों की पहचान करना।
2	समूह निर्माण	2-6 महीने	समूह के नियम कायदे और उप नियम तैयार करना। समूह

			की मीटिंगों को नियमित करना। बचतों को इक्कठा करना। ऋणों की वसूली। समूहों में समन्वय और तालमेल हिसाब-किताब की व्यवस्था।
3	स्थायित्त्व का प्रथम चरण	7-12 महीने	लीडरशिप और स्थिरता, समूह स्तर पर कारोबार का स्वतंत्र या कम-से-कम सहयोग द्वारा संचालन, कलस्टर से तालमेल।
4	स्थायित्त्व का द्वितीय चरण	12-18 महीने	आय बढ़ाने वाले कार्यक्रमों की शुरुआत बैंकों को तथा क्लस्टर से संपर्क की शुरुआत नए समूहों का सहयोग।
5	विकास और विस्तार	18-28 महीने	बैंकों तथा क्लस्टर से सूत्र जोड़ना भूमिका में बदलाव आय बढ़ाने वाले कार्यक्रमों का विस्तार, समुदाय की समस्या पर ध्यान देना।
6	विस्तार और विकेंद्रीयकरण	24 महीने से ज्यादा	समूह तथा सदस्यों के लिए संपत्ति जोड़ना स्वयंसहायता समूहों के विचार को फैलाना और नए समूहों को बढ़ावा देना। ब्लाक स्तर पर फेडरेशन का गठन।

स्रोत- निपसिड क्षेत्रिय केंद्र (2010)

अध्ययन का उद्देश्य-

1. ग्रामीण विकास में महिलाओं का योगदान।
2. स्वयंसहायता समूह का उद्देश्य ग्रामीण निर्धन महिलाओं को लघु ऋण उपलब्ध करना है तथा इसके साथ ही साथ बैंकिंग गतिविधियों के साथ जोड़कर बचत तथा महिलाओं में आपसी सहयोग का बढ़ावा देना है।
3. ग्रामीण निर्धन महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाकर उनका जीवन स्तर ऊपर उठाना।
4. महिलाओं की सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी का पता करना।

साहित्य पुनरावलोकन-

वी. एम. मुखर्जी (2005) ने बताया गरीबी दूर एवं आर्थिक सशक्त बनाना ही महिला सशक्तिकरण मूल उपलब्धि है।

डॉ. के. एम. मोदी (2014) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि स्वयंसहायता समूहों को ऋण प्रदान करने से उनकी रोजगार क्षमता उत्पादकता व परिसंपत्ति निर्माण क्षमता बढ़ गई है। इसके साथ ही साथ ग्रामीण महिलाओं की सौदा शक्ति, सहभागीता व निर्णयाधिकारों मैं वृद्धि होने के कारण ग्रामीण रोजगार प्रक्रिया में उनका योगदान उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है आंध्रप्रदेश में स्वयंसहायता समूहों ने ग्रामीण

महिलाओं की दक्षता, योग्यता व कौशल बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे ग्रामीण महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़े हैं।

डॉ. जी. एल. शर्मा (2015) ने अपने विचार रखते हुए कहा है कि देश में स्वयंसहायता समूहों के माध्यम से सतत एवं समावेशी विकास की धारा को आगे बढ़ाने में निश्चित ही मदद मिल रही है लेकिन यहां वित्तीय साक्षरता एवं वित्तीय समावेशन को विकसित करना होगा ऐसे तरीकों को जन आंदोलन का रूप देकर सफल बनाने की आवश्यकता है स्वयंसहायता समूह के स्थान पर अब संयुक्त उत्तरदायित्व समूहों की स्थापना कर देश में समावेशी विकास हेतु प्रयास किए जा रहे हैं।

रामचरण धाकड़ (2014) ने अपने अध्ययन **"बदल रही है रूढ़िवादी प्रथाओं को स्वयंसहायता समूहों की महिलाएं"** में स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि अब तक परिवार के सामाजिक अथवा अन्य कार्यों के निर्णय लेने में पुरुषों की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती आयी है लेकिन स्वयंसहायता समूह की स्वरोजगार करने वाली महिलाएं परिवार की आर्थिक आय में भागीदार बनने के कारण उन्हें परिवार के निर्णयों में शामिल किया जा रहा है जिससे महिलाओं का परिवार में जहां एक ओर सम्मान बढ़ा है वहीं दूसरी ओर पहचान भी कायम हुई है नदबई पंचायत समिति क्षेत्र के गादौली गांव के स्वयंसहायता समूह की श्रीमती विमला अपना पशुपालन का कार्य कर प्रतिदिन करीब 100 से 125 रुपये आसानी से कमा रही हैं मिली आय से बच्चों की शिक्षा व परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में व्यय की जाने लगी।

संजय श्रीवास्तव (2016) ने अपने अध्ययन **"महिला सशक्तिकरण की बदलती तस्वीर"** से ये बात उभरकर सामने आयी है कि महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने से परिवार में खुशहाली और आर्थिक तंगी भी दूर होती है क्योंकि उस परिवार में अभी तक पुरूष ही कमाते थे और परिवार की बढ़ती जरूरतों को बमुश्किल से पूरा कर पाते है ऐसे में महिलाओं का आत्मनिर्भर बनना बच्चों को अच्छी शिक्षा और अच्छा पोषण दोनों उपलब्ध होता है मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में यह तथ्य सामने आयें हैं।

डॉ. नीलम (2015) ने अपने अध्ययन में पाया कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए आर्थिक सहभागिता बढ़ाने की आवश्यकता को लेकर नीति-निर्माताओं, समाज और स्वयं महिलाओं में पहले से अधिक जागरूकता आई है महिलाओं के मानवीय अधिकारों और मानव-विकास सम्बन्धी दृष्टिकोणों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला जा रहा है परंतु महिलाओं की आर्थिक भागीदारी में महत्त्वपूर्ण सुधार आना अभी शेष है।

प्रेमनारायण शर्मा, संजीव कुमार झा एवं अन्य (2018) के अनुसार स्वयंसहायता समूह अपने छोटे आकार के कारण बाहरी संसाधनों का पूर्ण रूपेण उपयोग करने में सक्षम नहीं है इसलिए उनकी नेटवर्किंग की आवश्यकता है हो नेटवर्किंग के उद्देश्य तथा आवश्यकताएँ सुव्यक्त करना भी महत्त्वपूर्ण है यह भी निर्धारित होना चाहिए कि नेटवर्किंग की प्रक्रिया में संकुल का आकार स्वरूप तथा उसके विकास की प्रक्रिया नेटवर्किंग में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका संकुल की कार्यप्रणाली आदि के विषय में भी स्पष्टता

होनी चाहिए इन सारी कार्यवाहियों को पूर्ण करने के पश्चात महिला विकास हेतु सामाजिक नियोजन अथवा सामाजिक विकास की परियोजना तैयार करना सरल होगा।

डॉ. कृष्ण चंद्र चौधरी (2019) के अनुसार, महिला सशक्तिकरण के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी समितियां एवं स्वयंसेवी संस्थाएं प्रयासरत हैं महिलाओं का सर्वांगीण सशक्तिकरण बेहतर तथा अधिक न्यायोचित समाज निर्माण का अनिवार्य अंग है।

शोध प्रविधि एवं अध्ययन क्षेत्र-

प्रस्तुत शोध पत्र अन्वेषणात्मक शैली पर आधारित है तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है प्राथमिक आंकड़ों हेतु "वैयक्तिक अध्ययन पद्धति" को अपनाया गया है।

अध्ययन क्षेत्र के रूप में उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद के सरोजनीनगर विकासखंड के औरावां ग्राम में महिला स्वयंसहायता समूह में कार्यरत महिलाओं का वैयक्तिक अध्ययनों का विवरण निम्नवत है।

केस अध्ययन-1

समूह से जुड़ी 38 वर्षीय(ए.डी.) जो सरोजनीनगर विकासखंड के औरावां गांव में 4 बीघा जमीन मालिक से पट्टे पर लेकर फूल, फल, सब्जी की खेती का काम पूरे वर्ष भर करती हैं। उसके एक पुत्र तथा दो पुत्री हैं जिनको गांव के नर्सरी स्कूल में पढ़ने लिए भेजती है ए. डी. का 43 वर्षीय पति मजदूरी का काम करता है ए.डी. ने खेती का काम करने के साथ-साथ पशुपालन का भी काम करती हैं उसका मानना है कि एक साथ दोनों काम फायदेमंद साबित हुए हैं अब वे स्वावलंबी बन गई है घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिए उसे महाजनों के पास सहयोग के लिए नहीं जाना पड़ता है।

मालीक से जमीन पट्टे पर लेकर खेती करने का कारण पूछने पर ए. डी. बताती हैं गांव में उसके पास अपनी कोई जमीन नहीं है और कम शिक्षित होने के कारण कोई नौकरी भी नहीं कर सकती इसलिए यह काम आसानी से मिल गया तो कर लिया।

इस केस अध्ययन से पता चलता है कि समूह से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक तथा उनके जीवन-स्तर में बेहतर सुधार हुआ है महिलाएं आत्मनिर्भर तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई हैं। जिससे वे व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त होने के साथ-साथ सामूहिक स्तर पर भी सशक्त हुई है।

केस अध्ययन-2

समूह में काम करने वाली 50 वर्षीय (एस.के.) सरोजनीनगर विकासखंड के औरावां गाँव की रहने वाली हैं। (एस.के.) के परिवार में उसका 55 वर्षीय पति तथा 4 बच्चे भी हैं, जिसमें एक 22 वर्षीय (एम.) पुत्री तथा 18 वर्षीय पुत्र (वी.), 15 वर्षीय पुत्री (एल.) व 12 वर्षीय पुत्र (जी.) है। (एस. के.) का पति रिक्शा चलाते थे उसके परिवार का भरण-पोषण ठीक से नहीं हो पाता था। तब (एस.के.) ने भुखमरी की स्थिति से उबरने के लिए महिला समूह का सहारा लिया, गांव के जमीदार से 5 बिस्वा जमीन पट्टे पर लिया और फूल

की खेती शुरू किया साल दर साल यह सिलसिला बढ़ता रहा, अब 6 बीघा जमीन पट्टे पर लेकर सब्जी व फूल की खेती शुरू किया, साल दर साल यह सिलसिला बढ़ता रहा अब दूसरी महिलाओं को भी समूह से जोड़कर स्वावलंबन बनी।

इस केस अध्ययन से यह पता चलता है कि (एस.के.) पढ़ी-लिखी तो कम है लेकिन अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक है उसका मानना है कि समूह से जुड़ने के बाद न केवल आर्थिक रूप से मजबूत हुई बल्कि समाज में प्रतिष्ठा भी हासिल की उसके विश्वास एवं लगन के कारण सभी गांव वाले इज्जत की नजर से देखते हैं।

केस अध्ययन-3

समूह की अध्यक्ष विमला देवी की उम्र 47 वर्षीय है जो सरोजिनीनगर विकासखंड के औरावां गॉव में किराने की दुकान चला रही है। इसके दो संताने हैं इनमे एक पुत्र व एक पुत्री है विमला का पति मजदूरी का काम करता है विमला बताती है कि समूह में जमा पूंजी से उन्होंने ऋण लेकर दुकान खोली है कमाई के पैसों से वह नियत समय पर कर्ज का पैसा लौटा रही है साथ ही अब कर्ज के लिए उसे हाथ नहीं फैलाना पड़ता है इस कार्य में उसे घर के पुरुष सदस्यों का भी सहयोग मिल रहा है विमला स्वयंसहायता समूह से जुड़कर अपनी एक अलग पहचान एवं प्रतिष्ठा हासिल की है।

इस केस अध्ययन से पता चलता है कि विमला अपने पति के कमाई पर निर्भर न रहकर स्वयंसमूह से जुड़कर अपनी एक अलग पहचान एवं सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल की है उसका मानना है कि बैंक एवं समूह की सहायता से किराने की दुकान खोली जिससे आय में निरंतर वृद्धि होती गई। आगे चलकर उनकी आर्थिक स्थिति में न ही सिर्फ सुधार आया बल्कि वे अपना ऋण वापस करने में भी सफल रही।

केस अध्ययन-4

समूह से जुड़ी 50 वर्षीय सावित्री देवी सरोजिनीनगर विकासखंड के औरावां गांव में दलित जाति की महिला है सावित्री घर के पास में ही सिलाई केंद्र चलाती हैं इसके अलावा दुकान भी चलाती हैं उसके 3 बच्चे है सावित्री का 56 वर्षीय पति मानसिक रूप से बीमार है सावित्री बताती हैं कि जब हम समूह से नहीं जुड़े थे तब बाहर से 10 रुपये सैकड़ा महीने व्याज पर कर्ज लिए थे जब हम समूह से जुड़े तो हमने दो रुपये सैकड़ा महीने ब्याज पर दस हजार रुपए कर्ज लेकर उसे चुका दी। फिर हम समूह से 15 हजार रुपये कर्ज लेकर दुकान चलाने लगी दुकान से सारा खर्च निकलने लगा और फिर सिलाई का भी काम शुरू कर दी।

इस केस अध्ययन से पता चलता है कि सावित्री देवी को समूह से जुड़ने से न केवल उन्हें साहूकार के चंगुल से मुक्ति मिली बल्कि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी हो गई सावित्री बताती हैं पहला बदलाव तो यह आया कि आज समूह में बैठकर हम अपनी परेशानी दूर कर रहे हैं अगर हमारा समूह न होता तो हम सिलाई का काम नहीं कर पाते और कोई धंधा रोजगार न कर पाते और न ही बच्चों को पढ़ा पाते।

केस अध्ययन-5

कलावती सरोजनीनगर विकासखंड के औरावां गांव में अनुसूचित जाति की एक गरीब परिवार की महिला हैं परिवार में पति और दो बच्चे हैं इनमें से एक पुत्र और एक पुत्री है साथ में श्वसुर भी रहते हैं पति लखनऊ शहर में रिक्शा चलाने का काम करता है कलावती आर्थिक पिछड़ेपन के निवारण एवं रोजगार प्राप्ति हेतु महिला स्वयंसहायता समूह से जुड़कर अगरबत्ती बनाने का कार्य शुरू किया साथ में चमड़े की जूतियों (मोजड़ी) बनाने का भी कार्य प्रारंभ कर किया। कलावती पढ़ी-लिखी तो कम है लेकिन अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक है वह अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के लिए सरकारी स्कूल में नामांकन न कराकर प्राइवेट स्कूल में करायी है कलवाती बताती है कि समूह से जुड़कर अपने परिवार का भरण-पोषण सुचारू रूप से कर रही हूं।

इस केस अध्ययन से पता चलता है कि कलावती महिला स्वयंसहायता समूह जुड़कर अपने परिवार को आर्थिक संबल प्रदान किया, इस प्रकार स्वयंसहायता समूहों के जरिए महिलाएं आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने के साथ ही महिला समस्याओं के प्रति जागरूक एवं सचेत हो गई हैं एवं समाजिक व आर्थिक सशक्तिकरण की राह पर अग्रसर हो रही है उनके जीवन में सकारात्मक बदलाव परिलक्षित हो रही है तथा महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने में स्वयंसहायता समूहों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

निष्कर्ष-

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्वयंसहायता समूह में कार्य कर रही महिलाये समूह से जुड़कर महिला शिक्षा, स्वरोजगार सरकार द्वारा चलाये जा रहे कल्याणकारी योजनाएं, कानूनी अधिकार स्वास्थ्य एवं पोषण के बारे में जानकारी प्राप्त करती हैं उनका आत्मविश्वास बढ़ा है और वह अपना महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में सुदृढ़ हुई है महिलाओं का वाह्य परिवेश से जुड़ाव बढ़ा है उस समूह की महिला सदस्यों की बौद्धिक ताकत व तर्क शक्ति बढ़ी है उनमें घरेलू हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत आयी है अतः आने वाले समय में इन समूहों का विकास तेजी से होने की उम्मीद है जिससे देश की अर्थव्यवस्था में यह समूह अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकें।

संदर्भ सूची-

- शर्मा, डॉ.जी.एल.(2015):सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या-315.
- डॉ.के.एम. मोदी (2014):ग्रामीण महिला रोजगार में स्वयंसहायता समूहों का योगदान,कुरुक्षेत्र, अक्तूबर, पृष्ठ संख्या-25-27.
- धाकड़, रामचरण, (2014);"बदल रही है रूढ़िवादी प्रथाओं को स्वयंसहायता समूहों की महिलाएं" कुरुक्षेत्र, अगस्त, पृष्ठ संख्या- 45-48.

- भालसे, मंजूला और रेखा आचार्य (2012): स्वयंसहायता समूह का भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव, Indian streams Research journal volume 2 Issus 9 Oct. P. 3-5
- डॉ. नीलम(2015):महिला सशक्तिकरण एवं राष्ट्रिय महिला आयोग, गौतमबुद्ध सेंटर, दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 127
- श्रीवास्तव, संजय(2016):महिला सशक्तिकरण की बदलती तस्वीर, कुरुक्षेत्र, जनवरी, पृष्ठ संख्या- 22-25.
- शर्मा, प्रेमनारयण झा संजीव कुमार एवं अन्य(2018):महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास, भारत बुक सेंटर,लखनऊ, पृष्ठ संख्या-208-240.
- चौधरी, डॉ. कृष्ण चंद्र(2019): ग्रामीण युवा महिलाओं में उद्यमिता विकास, कुरुक्षेत्र, जनवरी, पृष्ठ संख्या-47-50.
- शाहीन रजी(2019):सशक्त महिला सशक्त समाज, योजना, मार्च, पृष्ठ संख्या- 50-54.
- नाबार्ड व रिजर्व बैंक (2010): स्वयंसहायता समूह मार्गदर्शिका, पृष्ठ संख्या -7.

विद्यानिवास मिश्र के मूल्य-बोध का समकालीन संदर्भ

('तुम चंदन हम पानी' के विशेष संदर्भ में)

रोशन कुमार प्रसाद[1]

सारांश

समकालीन संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र जी का चिंतन हमारे परंपरागत नैतिक मूल्यों को मात्र समझने का माध्यम ही नहीं है, अपितु मनुष्य को एक स्वच्छ जीवन जीने की प्रेरणा देने वाला विचारात्मक सूत्र भी है। दरअसल मिश्र का मूल्य-बोध प्राचीन वांङ्मय से प्रेरणा पाकर नवीन चिंतन-धारा से केवल प्रभावित ही नहीं हुआ है, बल्कि और भी अधिक विकसित हुआ है। इस रूप में विद्यानिवास मिश्र भारतीय सांस्कृतिक चिंतनधारा के पुरोधा भी माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति व चिंतन आज विज्ञान व तकनीक के युग में क्या प्रासंगिकता रखता है अथवा मनुष्य में सहयोग व भावनात्मक संवेदना का ह्रास किस स्तर तक हो उठा है इसकी स्पष्ट झलक विद्यानिवास मिश्र के चिंतन व उनके लेखन में देखने को मिलती है। मिश्र जी के लेखन में मात्र भारतीय संस्कृति का शास्त्रीय और लोक पक्ष ही प्रस्तुत नहीं होता, अपितु इसमें जीवन जीने की नई दृष्टि भी समाहित है। भाषा, साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति, दर्शन इत्यादि मानवीय संदर्भों के व्यापक दर्शन मिश्र के निबंधों में अक्सर ही देखने को मिलते हैं। विद्यानिवास मिश्र के लेखन की विशेषता भी यही है, जो परंपरागत मनुष्य को आधुनिकता से व आधुनिक मनुष्य को उसकी परंपरा की जड़ से जोड़ता है। प्रस्तुत लेख विद्यानिवास मिश्र के चिंतनधारा के माध्यम से मानवीय मूल्यों की परख व उसकी पहचान को रेखांकित करता है साथ ही समकालीन संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र के मूल्य-बोध की प्रासंगिकता का विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है।

विद्यानिवास मिश्र के मूल्य-बोध का समकालीन संदर्भ

जब हम मानवीय मूल्यों के परिवर्तमान स्थिति पर विचार करते हैं; तो अनायास ही हमारा ध्यान मानव-जीवन के विकास के उस ऐतिहासिक काल-खंड की ओर चला जाता है; जहाँ से उसकी जय-यात्रा प्रारंभ होती है। आदिम मनुष्य द्वारा कृषि के आविष्कार किये जाने से सबसे पहला काम यह हुआ कि इस क्रांतिकारी उपलब्धि के परिणामस्वरूप मानव-मानव के मध्य परस्पर आर्थिक सहयोग की भावना का जन्म हुआ। मात्र आर्थिक उपादानों के सहारे जीवन को टिकाऊ नहीं बनाया जा सकता था, इसलिये अपने जीवन को व्यवस्थित करने के लिए उसने कबीलों व कुनबों का निर्माण किया। जैसे-जैसे वह सभ्यता का विकास करता गया, प्रकारांतर से उसके जीवन-स्तर में निरंतर बदलाव आता गया। वह अपनी दुर्दम जिजीविषा के बल पर आदि मानव से मानव और मानव से महामानव के रूप में अपने को स्थापित करने के लिए निरंतर

[1] पी-एच.डी., हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
ईमेल- helloroshan10@gmail.com संपर्क- 9527513013

प्रयत्नशील रहा। आज मनुष्य ने अपनी प्रबल इच्छा शक्ति और बौद्धिक कौशल के बल पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ-साथ ज्ञान की एक वृहद् परंपरा का विकास किया है। यह मानव की महान उपलब्धि का एक पहलू है। दूसरा पक्ष यह है कि भले ही आज उसने ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धियाँ क्यों न प्राप्त कर ली हों, परंतु आज के इस यांत्रिक युग में कहीं-न-कहीं हमारी संवेदनाएं, मनुष्य को आपस में जोड़ने वाली परस्पर सहयोग, समन्वय एवं परोपकार की भावनाएं निरंतर समाप्त होती जा रही हैं।

विद्यानिवास मिश्र का निबंध-संग्रह 'तुम चंदन हम पानी' ऐसे ही मानवीय मूल्यों की पड़ताल करता है। सन् 1957 में प्रकाशित इस निबंध संग्रह में कुल 25 निबंध हैं, जो भारतीय संस्कृति की मूल मान्यताओं, हमारे आराध्यों और हमारे मांगलिक प्रतीकों को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं। यह निबंध-संग्रह मात्र भारतीय संस्कृति का शास्त्रीय और लोक पक्ष ही नहीं प्रस्तुत करता, प्रत्युत हमें जीवन जीने की नई दृष्टि भी प्रदान करता है। जब हम मिश्र के निबंध साहित्य का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि यह अपने में विविध संदर्भों को समेटे हुए है। भाषा, साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति, दर्शन इत्यादि मानवीय संदर्भों के व्यापक दर्शन मिश्र के निबंधों में अक्सर ही देखने को मिलते हैं। विद्यानिवास मिश्र के मूल्य-बोध को समकालीन संदर्भ में देखने से पूर्व यहाँ समकालीनता का परिचयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यंत समीचीन प्रतीत होता है। अध्ययन की इसी कड़ी में उनके निबंध संग्रह 'तुम चंदन हम पानी' को केंद्र में रखकर वर्तमान संदर्भ में उनके चिंतन की प्रासंगिकता पर सूक्ष्मता से विचार करने का प्रयास किया जायेगा।

आलोचना के क्षेत्र में प्रयोग किया जाने वाला समकालीनता वह अवधारणात्मक पद है, जिसको किसी एक परिभाषा के चौखटे में बांधकर नहीं रखा जा सकता। यह शब्द एक कालवाचक संज्ञा है, प्रत्यय है। समकालीन का सतही अर्थ है, एक ही समय में रहने वाला व सामान युग में रहने वाला। यह अंग्रेजी के 'कान्टेम्पोरेरी' (Contemporary) का हिंदी पर्याय है। वास्तव में 'सम' शब्द का अर्थ 'एक ही' व 'एक साथ' और 'कालीन' का अर्थ 'समय' व 'काल' है। इस प्रकार समकालीन का स्पष्ट अर्थ एक ही समय में होने व रहने वाला है। मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार समकालीन का अर्थ है, "जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और लोग भी विशिष्ठ रहे हों। एक ही समय में रहने वाला। जैसे महाराणा प्रताप अकबर के समकालीन थे।"[1] वस्तुतः समकालीनता के अर्थ स्वरूप व उसकी परिभाषा को लेकर विद्वानों में मतभेद देखने को मिलता है; किंतु समकालीनता को लेकर श्री कल्याण चंद्र का मत विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनके अनुसार "समकालीनता में वर्तमान बोध के साथ ही अतीत और भविष्य का विवेकसम्मत बोध होता है। यह विशिष्ट वर्तमान बोध ही समकालीनता को अभिव्यक्ति देता है।"[2] इस प्रकार समकालीनता का संबंध अतीत से होते हुए भी अपने विशिष्ट मूल्यों के कारण वर्तमान से बना रहता है। विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंध संग्रह 'तुम चंदन हम पानी' में सत्य-धर्म, दान-धर्म, दया-धर्म, आनंद तत्त्व एवं प्राकृतिक सौंदर्य की रक्षा पर अत्यधिक बल दिया है जो समकालीन संदर्भ में विलुप्त होती नैतिक मूल्यों का आधार स्तंभ है। उपर्युक्त बिंदुओं पर विचार करते हुए मिश्र के मूल्य-बोध को समझना इस शोध आलेख का मूल प्रयोजन है।

1. विद्यानिवास मिश्र का सत्य-धर्म के प्रति दृष्टिकोण

विद्यानिवास मिश्र जब सत्य के स्वरूप पर विचार करते हैं; तो उनके चिंतन का दार्शनिक पक्ष हमें दिखायी देता है। वे सत्य और असत्य को पृथक्-पृथक् करके देखना कोरा बौद्धिक श्रम का निरर्थक व्यय मानते हैं। वे किसी भी राष्ट्र को एक आदर्श रूप प्रदान करने के लिए ऐसे सत्य की वकालत करते हैं; जो अखंड हो, कर्तव्य की भावना से युक्त हो तथा मनुष्य-मनुष्य के मध्य समन्वय स्थापित करने की उसमें अपार शक्ति हो। सत्य संबंधी मान्यताओं को उनके निबंध 'अहं अनृतात् सत्यम् उपैमि' में सहज ही देखा जा सकता है; जिसमें उन्होंने भारतीय संस्कृति की ग्रहणशीलता (द्रविड़ों के पूजा विधान, निषाद् की विनयशीलता तथा विजातीय सत्य) के सम्मिलित रूप को रेखांकित कर उसे 'एकम् सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के रूप में स्वीकार किया है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है, "सत्य एक है और अखंड है। इसके पहलू कई हो सकते हैं। देश और काल के भेद से उन पहलुओं के कई नक्शे भी हो सकते हैं; पर सत्य अनेक नहीं हो सकता और उसके खंड नहीं किये जा सकते। सत्य के बारे में शुद्ध-अशुद्ध का अनुपात नहीं निकाला जा सकता। इंद्र, वायु, वरुण, अग्नि और सूर्य यदि सत्य हैं तो शिव, उमा, विष्णु और दुर्गा भी उतने ही सत्य हैं, निराकार और निरंजन भी उतने ही सत्य हैं, कम-अधिक कोई नहीं। हमारी सत्य-साधना ने यह सीखा ही नही सत्य का सत्य से विरोध होता है, सत्य का सत्य से खंडन होता है, सत्य का सत्य से भेद होता है। इस लिए जब द्रविड़ों ने पूजा विधान दिया, हमने उसे सिर आँखों लिया। निषाद ने विनय दिया, हमने उसे हृदय से लगाया। हमने विजातीय सत्य को भी स्वीकार किया। किसी सत्य से इनकार नहीं किया। सत्य का पैमाना है, सत्य की खोज, सत्य को पाने की कोशिश। सत्य को कायरता का, पलायन का और वंचना का कवच नहीं पहनाया जा सकता।"[3]

इस उद्धरण में निबंधकार ने सत्य को अविभाज्य, कायरता, पलायनता एवं प्रवंचना रहित मानकर इसे कालबद्ध चेतना के साथ अंतरभूत करके देखने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि में सत्य का चाहे कोई भी रूप क्यों न हो, इसका मुख्य ध्येय मानवीय मूल्यों की रक्षा करना ही होना चाहिए। साहित्य ही वह क्षेत्र है, जो इनकी रक्षा भावात्मक और विचारात्मक दोनो ही स्तर पर भलि-भांति करता है। राजनीति शायद यह नहीं कर पाती; इसलिये वह कलुषित हो जाती है। कहना न होगा कि सत्य बड़े साहस से आता है। अपना हृदय निःसंकोच भाव से किसी के समक्ष खोलकर रख देना बड़े ही साहस का काम है और यह साहस हमारी राजनीति की प्राचीन परंपरा में देखने को मिलता है। कहा जाता है कि शकुंतला-दुष्यंत-पुत्र भरत ने अपने सात पुत्रों में से किसी एक में भी राजा का गुण न पाकर दत्तक पुत्र भरद्वाजभिमन्यू को हस्तिनापुर का युवराज नियुक्त कर एक स्वच्छ लोकतंत्र की स्थापना की थी।

शीत युद्ध के दौरान जब विश्व दो गुटों में विभाजित हो गया तब हमने गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाकर विश्व को यह संदेश दिया था कि- "तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा वैभव, तुम्हारा अभिमान, तुम्हारा दावा झूठा है। दूसरों को आश्रित बनाकर आश्रयदाता बनाने वाली तुम्हारी सभ्यता मिथ्या है। उसे छोड़ो, सत्य को स्वीकार करो। एक-दूसरे से दुराव, एक-दूसरे से छुपाव छोड़ो। एक-दूसरे पर विश्वास करना सीखो। एक-दूसरे को सच्चा जानना सीखो।"[4]

उल्लेखनीय है कि पश्चिम के शक्तिशाली देशों ने अपने मिथ्याभिमान एवं झूठे आश्वासन से तीसरी दुनिया के देशों के प्राकृतिक संसाधनों पर एकाधिकार करने की चेष्टा की। मिश्र ने इस उद्धरण के माध्यम से ऐसे शक्तिशाली देशों द्वारा छल-छद्म की प्रवृत्ति को त्यागकर उनसे एक-दूसरे के मध्य आत्मीय संबंध कायम करने का आग्रह किया है। जैसाकि विद्वानों द्वारा उन्हें पलायनवादी करार देते हुए जीवन की परिवर्तमान स्थिति के प्रति उदासीन होने का उनपर आरोप लगाया जाता रहा है, इस संबंध में मिश्र जी का उक्त राजनीतिक चिंतन ऐसे भ्रामक धारणाओं का सटीक खंडन करता है।

2. दाम्यत्, दत्त, दयध्वम् की प्रतिष्ठा और विद्यानिवास मिश्र

दाम्यत् (इंद्रीय निग्रह), दत्त (उदारता), एवं दयध्वम् (दयालुता) अपने और पराये को जोड़ने वाली प्रवृत्ति है। इसका वास्तविक अर्थ अपनेपन का दावा छोड़ना है। उदाहरणार्थ भौतिक वस्तुओं के प्रति मोह को त्यागकर निःस्वार्थ भाव से न केवल उसे दूसरे को अर्पित कर देना है, प्रत्युत समस्त मानव-जाति के हृदय में सहिष्णुता की भावना को जागृत करना भी है। विद्यानिवास मिश्र ने 'दाम्यत्, दत्त, दयध्वम्' नामक निबंध में अपने उद्गारों को इस प्रकार व्यक्त किया है- "मानव का जीवन-मंत्र दान है। दान की परिभाषा है, अपनेपन का दावा छोड़ना। जिसे अपनी मानकर ममता रखी उस वस्तु को सहज भाव से दूसरे को अर्पित कर देना, यह दान अपने और पराये को जोड़ने वाली संधि है। यह दान मानव का उसकी समस्त दुर्बलताओं से उद्धार है क्योंकि दान देकर मनुष्य एकदम बड़ा हो जाता है।"[5]

मिश्र दान-धर्म की सार्थकता तभी सिद्ध मानते हैं, जब वह अपनेपन के दावे से रहित समयानुकूल व राष्ट्रोचित हो। उदाहरण के तौर पर देवकी और वसुदेव को कंस के कारागृह से मुक्ति दिलाने व उसके अत्याचार का प्रतिकार करने हेतु तरुणों, सुहागिनों, माताओं, पिताओं के संयुक्त त्याग व बलिदान को सहज ही देखा जा सकता है। आततायी कंस के अत्याचार से मथुरा वासियों को मुक्ति दिलाना बिना उनके संयुक्त त्याग व बलिदान के असंभव था। आधुनिक संदर्भ में जब हम इसका विश्लेषण करते हैं तो ज्ञात होता है कि आज इसका संबंध निश्चित रूप से श्रम से जुड़ा हुआ है। किसी भी राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिये उसके प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पित होना पड़ता है, तब कहीं एक विकसित राष्ट्र का निर्माण होता है। परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त भारत को वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठित देशवासियों द्वारा श्रम-दान करके ही किया जा सकता था। मिश्र ने अपने इसी निबंध में तत्कालीन भारतवासियों से श्रम-दान का आह्वान करते हुए लिखा है, "श्रम दो, श्रम दो, श्रम दो। अपने अशेष हृदय से देश के निर्माण की ईंट एक के ऊपर एक बिठलाने के लिये अपने पसीने का गारा दो, भवन अचल हो जायेगा। पसीना मलिन होता है। पर उस पसीने का दान उस मलीनता के लिये चुनौती होता है।"[6] कहने का आशय यह है कि कोई भी परिवार, समाज व राष्ट्र अपना विकासात्मक स्वरूप तभी धारण कर सकता है, जब व्यक्ति अपने आप को उसके कल्याणार्थ मनसा, वाचा, कर्मणा प्रतिबद्ध हो जाए।

3. विद्यानिवास मिश्र का आनंदवादी दृष्टिकोण

विद्यानिवास मिश्र दाम्यत्, दत्त, दयध्वम् की ही भांति आनंद तत्त्व को एक ऐसी वस्तु के रूप में स्वीकार करते हैं, जिसे आत्मसात करके समस्त वादों-प्रतिवादों से मुक्त होने के साथ ही एक स्वस्थ किंतु कल्याणकारी विचारधारा की स्थापना की जा सकती है। आनंदवादी विचारधारा मात्र भोगवाद को प्रश्रय नहीं देती, वह 'परांतः सुखाय' की भावना को लेकर चलने वाली शक्ति भी है। उनकी दृष्टि में आनंद वह तत्त्व है, जो व्यष्टि विशेष की नहीं वरन् समष्टि के कल्याण की बात करता हो। उनके अनुसार वह विचारधारा जो मात्र व्यष्टि की मुक्ति का समर्थन करती हो; वह खोखली है। मिश्र की दृष्टि में 'अस्तित्त्ववादी' विचारधारा उनमें से एक है। वे अस्तित्ववाद के उस सिद्धांत के प्रबल विरोधी प्रतीत होते हैं; जो ईश्वरीय सत्ता को महत्त्व न देकर व्यक्ति की सत्ता को केवल स्वीकार ही नहीं करता, वरन् मनुष्य जाति के विकास की सर्वोत्तम सामाजिक संस्था की अवधारणा का खंडन भी करता है। 'व्यष्टि और समष्टि की संधि' नामक निबंध में उनकी आस्थावादी और आनंदवादी दृष्टि अत्यंत मुखर हो उठी है। उन्होंने शिव को आनंद के रूप में न केवल स्वीकार किया है, वरन् आनंद रूपी ईश्वर के प्रति अपनी गहरी आस्था भी प्रकट की है। इस संदर्भ में उनके निबंध से एक उद्‌रण को देखा जा सकता है "हम ईश्वर या समाज के स्थान पर मानव को प्रतिष्ठित करने की बात क्यों करते हैं? ईश्वर, समाज और व्यक्ति में आनंद को प्रतिष्ठित करने की बात क्यों नहीं करते? संप्रदाय से संप्रदाय का जन्म होगा, उससे अनावस्था आएगी। आनंद या भूमा ऐसी स्थिति है, जहाँ से पुनरावर्तन नहीं होता फिर उसी के ऊपर क्यों न बल दिया जाए?"[7]

ध्यातव्य है कि विद्यानिवास मिश्र की यह उक्ति आज कितनी प्रासंगिक दिखाई देती है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। हमारे धार्मिक और राजनीतिक मठाधीष अपनी-अपनी विचारधार और अपने-अपने संप्रदाय को केवल श्रेष्ठ सिद्ध करने में ही नहीं लगे हुए हैं, बल्कि इन्होंने कट्टरवाद को पल्लवित और पुष्पित करने का कार्य भी किया है।

4. विद्यानिवास मिश्र का सौंदर्य-बोध

मिश्र सौंदर्य और कला के पारखी माने जाते हैं। 'तुम चंदन हम पानी' निबंध संग्रह में अवर-सृष्टि और मानव-सृष्टि के सौंदर्य के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। उनके द्वारा इस रचना में कई ललित शब्दावली प्रयुक्त की गई है; जो हमारे अंतःकरण में स्थित लालित्य-तत्त्व को संस्पर्श करती हैं। यथा- 'प्रफुल्ल', 'मनोहर', 'सुंदर', 'उदात्त', 'सुषमा', 'दीप्ति', 'प्रीति' इत्यादि।

विधाता ने जब मानव की रचना की तो उन्होंने उसे बुद्धि-विवेक प्रदान करने के साथ-साथ उसे दृढ़ निश्चयी और अदम्य साहसी भी बनाया। उसकी यही अपराजेय शक्ति समय-समय पर प्रकृति प्रदत्त समस्त उपादानो में उसे एक सौंदर्यात्मक कृति के रूप में प्रतिष्ठापित करती रही है। तमाम सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक विप्लवों या मिथकीय संदर्भ को देखें तो महाकाल द्वारा सृष्टि को जलमग्न कर देने के बावजूद भी उसकी दुर्दम जिजीविषा कभी समाप्त नहीं हुई। उसकी आत्मा पवित्र और दीप्ति की प्रखरता अक्षुण्य बनी हुई है। यही कारण है कि आज के इस घोर निराषावादी युग में भी विद्यानिवास मिश्र को उसकी अपराजेय शक्ति

पर अटूट विश्वास है। उन्होंने 'कला के पलने के पास' नामक निबंध में लिखा है, "मनुष्य की आत्मा कितनी अपराजेय होती है कि वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपेक्षित रहकर भी अपनी प्रखरता दीप्त किए रहती है।"[8] आज के संदर्भ में मिश्र जी का उक्त विचार व्यक्ति को न सिर्फ आत्मबल प्रदान करता है बल्कि उसे सकारात्मक बल भी देता है।

विद्यानिवास मिश्र मानवीय सौंदर्य की महत्ता को तो स्वीकार करते हैं किंतु उनकी दृष्टि में सौंदर्य के उत्कर्ष के रूप में जगदीश्वर ही हैं। समस्त चराचर जगत् में ईश्वरीय सत्ता सौंदर्य के रूप में विद्यमान रहती है। मनुष्य के सुख-दुख में, आशा-निराशा में, प्रत्येक वस्तु में ईश्वरीय सत्ता का अनुभव हमारा सामूहिक चेतन सदियों से करता आया है। यही इस देश की मूल भावना है। मिश्र ने सौंदर्य की एक मात्र प्रतिमूर्ति ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार कर उससे भारतीय भाव या मनोविकारों को संश्लिष्ट करते हुए लिखा है, "जगत् के प्रतिभाषित सौंदर्य को जगदीश्वर से पृथक् देखकर उसे अमंगल मानने वाले विचारकों की दृष्टि भारत की मूल संस्कृति के लिए एक अपरिचित और अनात्मीय दृष्टि है। वस्तुतः चराचर जगत् के प्रत्येक अंश में मंगलमय प्रभु के अस्तित्व और उल्लास की भावना ही भारत की मूल भावना है।"[9] विद्यानिवास मिश्र ईश्वरीय सत्ता को भारतीय संस्कृति का वाहक मानते हैं जिसे हमारे सभ्यता के विकास में देखा भी जा सकता है। इसलिए वे जगदीश्वर को भारतीय संस्कृति से अलग करने की कल्पना का पुरजोर खंडन करते हैं। इस रूप में वे भारतीय संस्कृति एवं सौन्दर्य को ईश्वर का ही प्रतिरूप मानते हैं। सार रूप में कहा जाए तो मनुष्य के विकास में संस्कृति का महत्त्वपूर्ण योगदान है, किंतु आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में अपनी ही संस्कृति की उपेक्षा को विद्यानिवास मिश्र असंगत ठहराते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा है कि सभ्यता के विकास में जितना महत्त्व हमारी प्राचीन संस्कृति का है, उतना ही महत्त्व ईश्वरीय सत्ता का भी है।

मानव-सौंदर्य की ही भांति प्रकृति के प्रति विद्यानिवास मिश्र का अगाध प्रेम उनके निबंधों में स्थान-स्थान पर दिखायी देता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सौंदर्य के आस्वादन के लिये उन्होंने अपने अहं को त्यागने पर अधिक बल दिया है। यही कारण है कि लेखक विंध्यप्रदेश की सुषमा की पोर की सघनता में खो सा गया है। लेखक का प्रकृति के प्रति जो अगाध प्रेम है; वह इस बात की ओर प्रेरित करता है कि हम प्रकृति के समस्त उपादानों से प्रेम कर इनकी रक्षा कर पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित बनाये रखने के लिये सदैव प्रयत्नशील भी रहना चाहिए क्योंकि यदि प्रकृति सुरक्षित रहेगी; तो मानव-सृष्टि सुरक्षित रहेगी और यदि मानव-सृष्टि सुरक्षित रहेगी तो ही हमारे जीवन-मूल्य भी सुरक्षित रहेंगे।

प्राकृतिक या कलात्मक सौंदर्यानुभूति के लिए समस्त ज्ञान और अहंकार को त्यागना पड़ता है। ईश्वर प्रदत्त उन समस्त उपादानों से एकाकार होना पड़ता है, जो हमारे अंतःकरण में चिर स्थित आनंद-तत्त्व को जागृत करती रहती हैं। सौंदर्य की साकारता तभी हो सकती है, जब हम उनके साथ तदाकार हो जाते हैं। प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य तभी संभव हो सकता है जब हममें ग्रहणशीलता, उत्कंठा के साथ-साथ हमारे व्यक्तित्व में मौनशीलता, धैर्यशीलता और विनम्रता हो। विद्यानिवास मिश्र इस संदर्भ में लिखते हैं- "जब तक अपने को ग्रहणशील और उत्कंठित बनाकर हम विजन का सौंदर्य निरखने नहीं जाते, तब तक वह सौंदर्य

हमारे लिए अगोचर बना रहता है। हमारे मौन रहने पर ही वह बोल पड़ता है। हमारे ठहर जाने पर वह गतिशील हो जाता है और हमारे विनीत हो जाने पर ही वह स्फीत हो उठता है।"[10] प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति इतनी सूक्ष्म दृष्टि विद्यानिवास मिश्र जैसे कला मनोवैज्ञानिक की ही हो सकती है। मिश्र सौंदर्यानुभूति की उसी तदाकारिता की बात करते हैं; जिनका उल्लेख आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने निबंध-संग्रह 'चिंतामणि' के प्रथम भाग के निबंध 'कविता क्या है' में किया है, मुक्तिबोध ने भी अपनी रचना 'एक साहित्यिक की डायरी' के प्रथम लेख 'तीसरा क्षण' में भी इसी तदाकारिता की बात की है। यह तदाकारिता ही ईश्वर, प्रकृति, और मनुष्य के मध्य समन्वय स्थापित करती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र का मूल्य-बोध आदर्श मूलक दृष्टि से परिचालित है; किंतु यह जीवन की परिवर्तमान स्थितियों-परिस्थितियों को नये रूप में व्याख्यायित भी करता है। आदर्श मूलक प्रवृत्ति, जिसमें (सत्य, दान, दया, करुणा, प्रेम) के भाव अंतरनिहित होते हैं; उनकी रक्षा पर अत्यधिक बल देने के साथ ही "धारयति इति धर्मः" सूक्ति से प्रेरित होकर उन्होंने भारतीय संस्कृति के भाव-पुरुष कहे जाने वाले 'राम' और 'युधिष्ठिर' को कर्तव्यनिष्ठ और सत्य-धर्म के प्रतीक के रूप में स्वीकार कर वर्तमान पीढ़ी को उनके आदर्शों पर चलते रहने का संदेश भी दिया है; ताकि व्यष्टि और समष्टि द्वारा अपने राष्ट्र के कल्याणार्थ मनसा, वाचा, कर्मणा समर्पित हुआ जा सके।

मिश्र के मूल्य-बोध की एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह भी है कि वे अखंडतावादी दृष्टि को सर्वाधिक उपयुक्त मानते हैं; तभी तो उनके चिंतन में विश्वबंधुत्त्व की भावना सर्वाधिक दिखायी देती है। दरअसल विश्व की दो धुरी शक्तियाँ जब एक-दूसरे को तोल रही थीं; तब भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाये जाने को उन्होंने उचित ठहराते हुए महात्त्वाकांक्षी शक्तियों की दंभभरी प्रचेष्टाओं की कटु आलोचना की है। उनकी दृष्टि में मानव धर्म वही है; जो लोलुपता को त्यागकर परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र तथा राष्ट्र से विश्व कल्याण की भावना को अपना सके। हमारे विचार से ऐसा व्यापक दृष्टिसंपन्न निबंधकार न तो मात्र अतीतोन्मुखी ही हो सकता है और न ही वह समकालीन चुनौतियों से घबरा ही सकता है। विद्यानिवास मिश्र मात्र अतीत या वर्तमान के विषय में ही नहीं सोचते, बल्कि अतीत से सीख लेकर भविष्य के परिणामों के विषय में भी चिंतनशील दिखाई देते हैं।

यह कहने में तनिक भी हिचक नहीं कि विद्यानिवास मिश्र के लेखन का मूल्य बोध आज विलुप्त होती नैतिक मूल्यों की आधारशिला है। आधुनिकीकरण के इस दौर में, जहाँ मानवीय संवेदनाओं का पतन व व्यक्तिक स्वार्थ का चरम देखने को मिलता है, ऐसे में विद्यानिवास मिश्र के मूल्य बोध को आत्मसात करने की आवश्यकता जान पड़ती है। इतना ही नहीं, विद्यानिवास मिश्र की चिंतन दृष्टि राष्ट्रवाद के रूप में सदैव राष्ट्रीय एकता व राष्ट्र हित का ही समर्थन करती है जो वर्तमान समय में किसी भी राष्ट्र के विकास व उन्नति के लिए परम आवश्यक है। इस रूप में विद्यानिवास मिश्र का मूल्य बोध आज न सिर्फ प्रासंगिक है अपितु अत्यंत आवश्यक भी जान पड़ता है।

संदर्भ-

1. मिश्र, विद्यानिवास, 2000. तुम चंदन हम पानी, नेश्नल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण
2. शुक्ल, रामचंद्र, 2002. 'चिंता-मणि' (भाग 1), लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद, प्रथम संस्करण
3. मुक्तिबोध, गजाननमाधव, 2008. एक साहित्यिक की डायरी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, आठवाँ संस्करण

[1] वर्मा, रामचन्द्र. (1993). *मानक हिंदी कोश (पांचवा खंड)*. उत्तर प्रदेश : हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग. पृ. सं. 298.

[2] चन्द्र, कल्याण. (1996). *समकालीन कवि और काव्य*. उत्तर प्रदेश : चिंतन प्रकाशन कानपुर. पृ. सं. 10.

[3] मिश्र, विद्यानिवास. (2000). *(अहं अनृतात् सत्यम् उपैमि), 'तुम चंदन हम पानी'*. दिल्ली : नेश्नल पब्लिशिंग हाउस. पृ. सं. 3.

[4] वही, पृ. सं. 3.

[5] मिश्र, विद्यानिवास. (2000). *(दाम्यत्, दत्त दयध्वम्), 'तुम चन्दन हम पानी'*. दिल्ली : नेश्नल पब्लिशिंग हाउस. पृ. सं. 5.

[6] वही, पृ. सं. 5.

[7] मिश्र, विद्यानिवास. (2000). *(व्यष्टि और समष्टि की संधि), 'तुम चन्दन हम पानी'*. दिल्ली : नेश्नल पब्लिशिंग हाउस, पृ. सं. 98.

[8] वही, पृ. सं. 76.

[9] वही, पृ. सं. 79.

[10] मिश्र, विद्यानिवास. (2000). *(कला के पलने के पास), 'तुम चन्दन हम पानी'*. दिल्ली : नेश्नल पब्लिशिंग हाउस. पृ. सं. 79.

स्वतंत्रता पूर्व हिंदी आलोचना में रीतिकाल संबंधी विमर्श

शुभम सिंह[1]

सारांश

हिंदी साहित्य में रीतिकाल आरंभ से ही आलोचना के केंद्र में रहा है। रीतिकालीन कविता अपनी दरबारी संस्कृति, श्रृंगारिकता, अलंकारिकता, भाषायी प्रवृत्ति आदि के कारण आलोचकों के बीच विवाद का विषय रही है। हिंदी की आरंभिक आलोचना सिर्फ गुण-दोष विवेचन तक सीमित थी तथा आलोचक अपनी रूचि के अनुसार कवियों की आलोचना करते थे। स्वतंत्रता पूर्व हिंदी आलोचना का आरंभिक स्वरूप अत्यंत सतही रहा है। आलोचकों में किसी सूक्ष्म और वैज्ञानिक दृष्टि का आभाव था। मिश्र बंधु, लाला भगवानदीन, कृष्ण बिहारी मिश्र, पद्म सिंह शर्मा आदि सभी आलोचक भले ही हिंदी की आरंभिक आलोचना को गति प्रदान करने का कार्य करते हैं परंतु उनमें किसी भी प्रकार के सिद्धांत निरूपण और व्याख्या की प्रवृत्ति न के बराबर देखने को मिलती है। उत्तरोत्तर आचार्य रामचंद्र शुक्ल न केवल अपने युग की साहित्यिक आवश्यकताओं को पहचानने का कार्य करते हैं अपितु हिंदी साहित्य आलोचना हेतु एक नवीन शैली का विकास करते हैं। शुक्ल जी ने साहित्यिक प्रतिमानों की स्थापना ही नहीं की अपितु कवियों के साथ-साथ उनके साहित्य की भी विस्तृत व्याख्या की है। यही कारण है कि हिंदी की परवर्ती आलोचना में शुक्ल जी का प्रभाव व्यापक रूप से रहा है। कृष्ण शंकर शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि सभी आलोचक अपने आलोचना कर्म में भिन्न होते हुए भी शुक्ल जी की सैद्धांतिक मान्यताओं की व्याख्या करते हुए दिखाई देते हैं। स्वतंत्रता पूर्व रीतिकाल संबंधी साहित्य को लेकर उपर्युक्त आलोचकों के बीच तीखी बहस देखने को मिलती है। देव और बिहारी विवाद से लेकर कवियों की श्रेष्टता संबंधी विवाद, नामकरण, कवियों के वस्तु-विषय आदि को लेकर आलोचकों में जो विवाद हुए वह निश्चित ही आलोचना को विस्तार देने का कार्य करते हैं। संभवतः यही कारण है कि कालांतर में हिंदी आलोचना का जैसे-जैसे विस्तार होता गया रीतिकालीन साहित्य को लेकर आलोचकों की मूल्यांकन दृष्टि में भी परिवर्तन हुआ।

स्वतंत्रता पूर्व हिंदी आलोचना में रीतिकाल संबंधी विमर्श

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के इतिहास को चार कालों- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल में बाँटा है। जिसमें शुक्ल जी ने रीतिकाल का समय संवत् 1700-1900 के बीच रखा है। रीतिकालीन कविता अपनी दरबारी संस्कृति, रीति निरूपण, श्रृंगारिकता, काव्य की रसात्मकता, अलंकारिकता और भाषायी प्रवृत्तियों के कारण आलोचकों के बीच समय-समय विवाद का केंद्र

[1] शोधार्थी (हिंदी विभाग), हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला (हि.प्र.)
ई.मेल. - singhshubham876@gmail.com

रही है। प्रारंभ में जहाँ आलोचकों में नामकरण, कवियों की सर्वोच्चता (श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता) को लेकर एक प्रकार से संघर्ष हुआ तो बाद के आलोचकों ने अपनी-अपनी दृष्टि एवं सीमा के अनुसार कवियों की प्रवृत्तियों एवं कृतियों के विश्लेषण में गुण-दोष के साथ-साथ काव्यशास्त्रीय ग्रंथों, लक्षणग्रंथों का सहारा लेते हुए अपनी मनः स्थिति अनुरूप उनका स्पष्टीकरण एवं आलोचना की।

यदि हम आलोचना शब्द पर जायें तो आलोचना का शाब्दिक अर्थ है- सम्यक निरीक्षण अर्थात् मूल्यांकन करना। आलोचना रचनात्मक साहित्य का एक प्रमुख अंग है। आलोचना शब्द 'लुच्' धातु से बना है। 'लुच्' का अर्थ है देखना। देखना से अभिप्राय है उसकी व्याख्या करना एवं सम्यक मूल्यांकन करना। आलोचना के संदर्भ में श्यामसुंदर दास कहते हैं, "साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों तथा दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। यदि हम साहित्य को व्याख्या माने तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"[1]

हिंदी आलोचना का इतिहास रीतिकाल के थोड़ा पहले शुरू होता है और यदि हिंदी आलोचना की पहली पुस्तक पर विचार किया जाये तो 'हिततरंगिणी' के लेखक कृपाराम को हिंदी के सर्वप्रथम काव्यशास्त्री के रूप में माना जाता है। कृपाराम ने इस पुस्तक में रस निरूपण संबंधी चर्चा की है परंतु हिंदी में काव्य रीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने किया। हिंदी की प्रारंभिक आलोचना का स्वरूप संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर लक्षण ग्रंथों का निर्माण करना था और यह आलोचना सिर्फ गुण-दोष विवेचन तक सीमित थी, कविताओं का विस्तृत विवेचन, उनका खंडन-मंडन, नये सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि कुछ भी सुस्पष्ट नहीं था। इसका एक बड़ा कारण गद्य का विकास न होना था। भारतेंदु युग के आरंभ के साथ ही लेख रूप में पत्र-पत्रिकाओं में समालोचना संबंधी समीक्षाएँ प्रकाशित होना प्रारंभ हो गयी थी। आरंभिक आलोचना के बारे में शुक्ल जी कहते हैं, "हमारे हिंदी में समालोचना पहले पहल केवल गुण-दोष दर्शन के रूप में प्रकट हुई। लेखों के रूप में इनका सूत्रपात बाबू हरिशचंद्र के समय में ही हुआ।"[2]

हिंदी साहित्य में रीतिकाल का समय संवत् 1700-1900 तक माना जाता है, रीतिकाल अपने नामकरण, काल निर्धारण, प्रवृत्तियों, दरबारी संस्कृति एवं रचनात्मकता को लेकर आरंभ से ही आलोचना के केंद्र में रहा है। रीतिकाल के नामकरण को लेकर बात करें तो शुक्ल जी द्वारा सुझाया गया यह नाम सृजन के समय से ही केंद्र में रहा है और सभी आलोचक किसी न किसी दृष्टिकोण से इसे ही आधार रूप में मानकर अपनी बात रखते हैं। हालाँकि शुक्ल जी से पूर्व जार्ज ग्रियर्सन अपनी पुस्तक 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान (1888)' में 'रीतिकाव्य' शब्द का प्रयोग कर चुके थे। संस्कृत काव्यशास्त्र में बहुत पहले ही 'रीति संप्रदाय' नाम प्रसिद्ध हो चुका था, जिसमें 'रीतिरात्म काव्यस्य' की बात कही गयी थी, परंतु हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों एवं कवियों ने 'रीति' शब्द का व्यवहार परंपरा के रूप में ही किया था। रीति का अर्थ है 'विशिष्ट पद रचना'। रीतिकालीन कवियों के लिए रीति का अर्थ काव्य रचना पद्धति है। यदि ग्रियर्सन के 'रीतिकाव्य' शब्द के प्रयोग को देखा जाये तो शुक्ल द्वारा सुझाया गया रीतिकाल नाम किसी न किसी रूप में अनुसरण के रूप में माना जा सकता है। रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं नामकरण को लेकर विस्तृत

दृष्टि रखने वाले आलोचकों में मिश्र बंधु का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। 1910 में हिंदी 'नवरत्न' का प्रकाशन हुआ जिसमें मिश्र बंधु ने नौ कवियों के द्वारा क्रमानुसार श्रेष्ठता क्रम को दिखाया। मिश्र बंधु ने तुलसी एवं सूर के बाद देव को तीसरा श्रेष्ठ कवि माना तथा बिहारी को चौथे स्थान पर रखा, इससे एक बात स्पष्ट है कि मिश्र बंधुओं की नजर में बिहारी भी महत्त्वपूर्ण कवि हैं। मिश्र बंधुओं की श्रेष्ठता क्रम की यह प्रवृत्ति कालांतर में तुलनात्मक आलोचना के रूप में विकसित हुई। हालाँकि मिश्र बंधु के 'हिंदी नवरत्न' की आलोचना भी खूब हुई और शुक्ल जी की भाषा में, कविवृत्तकार अधिक थे, आलोचक कम। "लेकिन मिश्र बंधुओं का महत्त्व इससे कम नहीं होता क्योंकि उन्होंने जो वृत्त-संग्रह किया उसका उपयोग परवर्ती चिंतकों ने किया। स्वयं शुक्ल जी का इतिहास भी 'मिश्र बंधु-विनोद' का कम ऋणी नहीं है। मिश्र बंधु वह सारी सामाग्री प्रस्तुत कर देते हैं, जो आलोचक और इतिहासकार के लिए उपयोगी है।"[3] मिश्र बंधु अपने इतिहास 'मिश्र बंधु विनोद' में रीतिकालीन चमत्कारपूर्व शब्दावलियों, अलंकारों की अधिकता के आधार पर इस काल को 'अलंकृत काल' नाम दिया। परंतु क्या रीतिकाल में अलंकार, शब्दों की चमत्कारिकता के अतिरिक्त और कोई भी प्रवृत्तियाँ न थी**?** यह सोचने वाली बात है कि रीतिकालीन काव्यधारा में अलंकारिकता के अतिरिक्त, भक्ति, वीर, श्रृंगार आदि प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान थी। रीतिकालीन आलोचना संबंधी एक विस्तृत दृष्टि रखने के बावजूद मिश्र बंधु की आलोचना में स्पष्ट और समुचित मूल्यांकन प्रणाली का आभाव दिखाई देता है। रीतिकालीन परंपरा के अगले आलोचक कृष्णबिहारी मिश्र हुए। कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' पर समालोचना लिखकर दोनों कवियों की काव्य विवेचना के अतिरिक्त श्रृंगार के रसराजत्व पर भी विस्तृत विचार किया है। कृष्ण बिहारी मिश्र ने इसमें काव्य संबंधी अन्य धारणाओं को भी प्रस्तुत किया है वे 'देव और बिहारी' में 'रसराज' नामक अध्याय के प्रारंभ में कहते हैं, "कविता का उद्देश्य, हमारी राय में आनंद प्रदान करना है।"[4] कृष्ण बिहारी मिश्र देव व बिहारी की तुलना करते हुए देव को बिहारी से बड़ा कवि सिद्ध करते हैं वे देव की प्रशंसा में कहते हैं देव जी केवल कवि ही नहीं थे- उन्होंने काव्यशास्त्र में वर्णित रीति का वर्णन भी बड़े मार्के का किया है। वह कविता के प्रधान आचार्यों में से हैं।"[5] हालाँकि मिश्र जी देव की ही तरह बिहारी की भी प्रशंसा करते हैं "अपने सारे ज्ञान की सहायता से उन्होंने श्रृंगार रस का श्रृंगार कर डाला है।"[6] परंतु मिश्र जी देव तथा बिहारी दोनों कवियों के काव्योत्कर्ष की विवेचना करने के बावजूद देव को बिहारी से बड़ा कवि मानते हैं। कृष्णबिहारी मिश्र अप्रत्यक्ष रूप से महावीर प्रसाद द्विवेदी की उपयोगितावादी- नैतिक प्रधान मान्यताओं का भी विरोध करते हैं, वे कहते हैं, "हम कुरुचि-प्रवर्तक कविता के समर्थक नहीं हैं, परंतु श्रृंगार कविता के विरुद्ध जो आजकल धर्मयुद्ध-सा जारी कर रक्खा गया है, उसकी घोर निंदा करने से भी नहीं हिचकते हैं... कविता के लिए केवल रस-परिपाक चाहिए। उपयोगितावाद के चक्कर में डालकर ललित कला का सौंदर्य नष्ट करना ठीक नहीं।"[7]

कृष्ण बिहारी मिश्र की आलोचना दृष्टि भले वैज्ञानिक व आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उतनी विशिष्ट न रही हो परंतु शुक्ल जी प्रशंसा करते हुए कहते हैं, "मिश्र बंधुओं की अपेक्षा पं. कृष्णबिहारी जी साहित्यिक आलोचना के कहीं अधिक अधिकारी कहे जा सकते हैं।"[8] कृष्ण बिहारी मिश्र के 'देव और बिहारी' के उत्तर में लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' लिखा। जिसमें लाला भगवानदीन ने आलोचना को व्यापक व

विस्तृत कर बिहारी की रक्षा में अपनी आलोचना प्रस्तुत की। इसमें बिहारी पर चार-चार बिहारियों... का धावा देखकर बेचारा हिंदी साहित्य संसार घबड़ा गया है। इसमें 'बिहारी' के कात्योत्कर्ष की कहीं विवेचना दिखाई नहीं पड़ती। कृष्ण बिहारी मिश्र ने जो दोष 'बिहारी' पर लगाये हैं, लाला भगवानदीन ने बिहारी को मुक्त करके वे ही दोष 'देव' पर लगा दिये हैं। लाला भगवानदीन रीतिकालीन साहित्य के मर्मज्ञ थे तथा बिहारी और केशव पर जो टीकाएँ लिखी वह परवर्ती आलोचकों के लिए लाभदायक हुई। देव और बिहारी के विवाद में भाग लेने वाले आलोचकों में पद्मसिंह शर्मा का नाम आता है। शर्मा जी रीतिकालीन कविता के साथ-साथ साहित्य में श्रृंगार के प्रयोग अपेक्षित मानते हैं। तुलनात्मक समालोचना की जहाँ तक बात है तो पद्मसिंह शर्मा की दृष्टि कहीं अधिक व्यापक और सूक्ष्म है। जहाँ कृष्ण बिहारी मिश्र तुलनात्मक आलोचना के अंतर्गत एक ही भाषा के कवियों को लेते हैं वहीं शर्मा जी ने भाषा का बंधन स्वीकार नहीं किया है वे हिंदी कवियों की पंक्तियों की तुलना प्रायः संस्कृत, उर्दू या फारसी की रचनाओं से भी करते हैं। पद्मसिंह शर्मा की प्रसिद्ध रचना, 'बिहारी की सतसई' है जिसमें शर्मा जी ने सतसई परंपरा के उद्भव एवं विकास की चर्चा करते हुए बिहारी को प्रतिनिधि कवि माना है। आर्य सप्तशती एवं गाथा-सप्तशती के कई पदों का प्रभाव भी बिहारी के दोहों में दिखाया है। इस पुस्तक के माध्यम से पद्मसिंह शर्मा ने देव के समक्ष बिहारी पर लगाए गए आरोपों का खंडन भी किया है। शुक्ल जी बिहारी के प्रति पद्मसिंह शर्मा द्वारा किये गए पक्षपात को साहित्यिक मूल्य से जोड़कर देखते हैं।

हिंदी आलोचना के द्वितीय उत्थान पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल जी कहते हैं कि 'यह सब आलोचना बहिरंग बातों तक ही रही। भाषा के गुण-दोष, रस, अलंकार आदि की समीचीनता, इन्हीं सब परंपरागत विषयों तक पहुँची। स्थायी साहित्य में परिगणित होने वाली समालोचना जिसमें किसी कवि की अंतर्वृति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएँ दिखाई जाती हैं, बहुत ही कम दिखाई पड़ी।"[9] आगे हिंदी आलोचना के तृतीय उत्थान के अंतर्गत उसके विकास पर लिखते हुए कवियों की अन्तःप्रवृत्तियों की छानबीन की बात करते हैं, "इस तृतीय उत्थान में समालोचना का आदर्श भी बदला। गुण-दोष के कथन के आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंतः प्रवृत्तियों की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया।"[10] एक तरह से तृतीय उत्थान से हिंदी आलोचना के आधुनिकीकरण को माना जा सकता है। यह आधुनिकीकरण का कार्य शुक्ल जी की समीक्षा द्वारा हुआ। शुक्ल जी के पूर्व और उत्तर के समालोचना साहित्य को पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है कि शुक्ल जी की रचनाओं के कारण हिंदी की समालोचना ने नये युग में पर्दापण किया। शुक्ल जी की आलोचना मुख्यतः सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दो रूपों पर टिकी है। वे जहाँ सिद्धांत प्रतिपादन में प्रवृत्त होते हैं, वहीं प्रत्युत्तर में प्रचुर उदाहरण और उद्धरण देकर अपने कथन को प्रमाणित भी करते हैं। शुक्ल जी ने तुलसी, सूर, जायसी के साथ-साथ रीतिकाल पर विस्तृत समीक्षाएँ लिखी हैं। शुक्ल जी की मुख्य विशिष्टता उनकी वैज्ञानिकता, प्रगतिशीलता और इहलौकिकता है जिसमें तार्किकता के साथ-साथ प्रवृत्तियों के विवेचन और विश्लेषण की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। शुक्ल जी की दृष्टि रीतिकाल को लेकर एकदम स्पष्ट है वे रीतिकालीन कवियों द्वारा अपने काव्यों में अपनायी गयी पद्धति, लक्षण ग्रंथों की परिपाटी, उनकी श्रृंगारिकता, रस, अलंकारों की अधिकता, भाषायी प्रवृत्तियों, नायिका भेद

आदि सभी पर विचार करते हैं। बिहारी, केशव, चिंतामणि, देव, घनानंद आदि सभी प्रमुख कवियों पर अपनी दृष्टि डालते हैं। रीतिकालीन कविता को लेकर शुक्ल जी की आलोचना में प्रशंसा के साथ-साथ आलोचना का भी भाव है। शुक्ल जी ने इस काल के नामकरण में इसे 'रीतिकाल' के साथ-साथ 'श्रृंगारकाल' की ओर भी इशारा किया है। "वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानतः श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगारकाल कहे तो कह सकता है।"[11] शुक्ल जी रीतिकालीन काव्यधारा के कवियों द्वारा प्रस्तुत रस, अलंकारों आदि की प्रशंसा करते हैं। "इन रीतिग्रंथों के कर्त्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरुपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः श्रृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए।"[12] शुक्ल जी जहाँ कुछ बिंदुओं पर रीतिकालीन कविता की प्रशंसा करते हैं तो कहीं उसकी बंधी-बंधाई परिपाटी, काव्यगत शैली, रीति, दरबारी संस्कृति आदि की आलोचना भी करते हैं। "रीतिग्रंथों की इस परंपरा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी... वाग्धारा बंधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गये।"[13] इन सब के अतिरिक्त अगर संपूर्णता में देखें तो रीतिकालीन कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से अलग एक नयी भाव भंगिमा, रूप, शैली, विन्यास के बीच साहित्य में एक नये कलेवर के रूप में उपस्थित होती है जहाँ कवि और कविता दोनों स्वच्छंद है।

शुक्लानुवर्ती रीतिकालीन कविता के आलोचकों में कृष्णशंकर शुक्ल और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। दोनों ही आलोचक अपनी आलोचना में शुक्ल जी की परंपरा को आत्मसात करने के बावजूद कुछ प्रश्नों पर अपनी अलग दृष्टि रख उसकी व्याख्या करते हैं। कृष्णशंकर शुक्ल ने 'केशव की काव्यकला', और 'कविवर रत्नाकर' नामक दो प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी। इसमें उन्होंने दोनों कवियों का विद्वत्तापूर्ण अनुसंधान करने के साथ-साथ काव्यगत विशेषताओं को मार्मिक ढ़ग से प्रस्तुत किया है। 'केशव की काव्यकला' में कृष्णशंकर शुक्ल कहते हैं, "काव्यानंद हृदय की सहानुभूति की परिधि के विस्तार से प्राप्त होता है।"[14] कृष्ण शंकर शुक्ल यह नहीं मानते हैं कि 'केशव को कवि हृदय नहीं मिला था' इसके प्रत्युत्तर में वे अपना मत देते हुए कहते हैं, "जो पद्य स्थान-स्थान पर केशव की सुंदर भाव व्यंजना के उदारण स्वरूप उद्धृत किए हैं वे इस बात का पर्याप्त प्रमाण देते हैं कि कवि में सच्चे कवियों की क्षमता अवश्य थी।"[15] कृष्णशंकर शुक्ल ने केशव के काव्य-विचरण और उसकी व्याख्या में शुक्ल जी को आत्मसात करते हुए भी एक अलग दृष्टि रखते हैं। वे केशव के प्रति अधिक सहानुभूति से काम लेते हैं। कृष्ण शंकर शुक्ल 'कविवर रत्नाकार' आलोचनात्मक कृति के माध्यम से रत्नाकर की काव्य भूमि, अभिव्यंजना शैली, विभाव-चित्रण, भाव-व्यंजना, भक्ति भावना, अलंकार, भाषा आदि पर विचार किया है। शुक्लानुवर्ती आलोचकों में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रीतिकालीन आलोचना के प्रमुख आलोचकों में एक हैं। 'बिहारी', 'बिहारी की वाग्विभूति', 'हिंदी साहित्य का अतीत' आदि आलोचना पुस्तकों के माध्यम से बिहारी, भूषण, घनानंद, केशव आदि पर स्वतंत्र लेखन किया। मिश्र जी आचार्य शुक्ल द्वारा दिये गये 'रीतिकाल' नाम से भिन्न इस काल को वे 'श्रृंगारकाल' कहना उचित समझते हैं। उनका कहना है, "यदि रीतिकाल के समस्त ग्रंथों

की छानबीन की जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रकार के ग्रंथों में श्रृंगार तो किसी न किसी रूप में अवश्य मिल जाता है।"[16] इसके अतिरिक्त मिश्र जी का कहना है कि 'रीति' में बिहारी और घनानंद जैसे कवि समाहित नहीं होते हैं वे इससे सर्वथा भिन्न है। परंतु पूर्व में देखें तो शुक्ल जी रीतिकाल नामकरण के साथ-साथ श्रृंगारकाल के नामकरण की ओर भी इशारा करते हैं। मिश्र जी इस काल के कवियों का विभाजन रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध और रीतिमुक्त आधार पर करते हैं, इसमें भी रीतिबद्ध शब्द का प्रयोग शुक्ल जी के यहाँ मिलता है ऐसे में मिश्र जी शुक्ल जी के 'रीतिकाल' नामकरण को ही पुष्ट करते हैं। "'रीति' वह मानदंड है जिसके आधार पर इस काल के कवियों को श्रेणीबद्ध किया जा सकता है यह बात मिश्रजी के विभाजन से पुष्ट हो जाती है। फिर 'श्रृंगार काल' कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती।"[17]

इस प्रकार देखें तो मिश्र जी की दृष्टि नामकरण में अलग होते हुए भी शुक्ल जी का ही अनुसरण करते हुए दिखायी पड़ती है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, शुक्ल जी की परंपरा के लोकवादी चिंतक है वे रीतिकालीन कवियों की व्यवहारिक आलोचना के साथ उनके रस, अलंकार-योजना, रूप-चित्रण आदि पर गंभीरता एवं विद्वतापूर्वक विचार करते हैं। यद्यपि मिश्र जी की आलोचना में शुक्ल जी के सूत्रों की ही व्याख्या मिलती है। शुक्ल की आलोचना में जो अंतर्विरोध है वे यहाँ समाप्त होने के बजाय और दृढ़ता और आग्रह के साथ उभरकर आते हैं। हिंदी आलोचना आरंभ में भले ही गुण-दोष विवेचन तक सीमित थी परंतु समय और परिस्थिति के अनुरूप वह अपनी वस्तु-स्थिति व चिंतन में निरंतर पुष्ट होती गयी। रीतिकालीन कविता के प्रारंभिक आलोचकों में जहाँ कवियों की श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता क्रम को लेकर बहस दिखायी पड़ती है वहीं शुक्लयुगीन आलोचना के उपरांत आलोचकों ने कवियों का मूल्यांकन उनकी कृतियों में निहित भावों और अंत:प्रवृत्तियों के आधार पर छान-बीन कर किया। शुक्ल युगीन आलोचना ने हिंदी साहित्य में एक नयी वैचारिकी को जन्म दिया जहाँ सृजन के साथ-साथ सौंदर्य के प्रतिमान भी गढ़े गये, जो उत्तरोत्तर अपनी विकास प्रक्रिया में अग्रसर है। रीतिकालीन कविता भले ही विभिन्न आलोचकों के बीच अलग-अलग तरह से अंतर्विरोध के साथ व्याख्यायित होती रही है, परंतु यदि संपूर्णता में देखे तो रीतिकाल, हिंदी कविता के तौर पर प्रयोगशाला के रूप में आता है। जहाँ हिंदी कविता में रस, अलंकार, छंद विधान की नींव तैयार होने के साथ आगामी कविता की भावभूमि के लिए मार्ग प्रशस्त होता है।

संदर्भ -

[1] दास, श्यामसुंदर. (2017). साहित्यालोचन. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन. पृ. सं. 31.

[2] शुक्ल, आचार्य. रामचंद्र. (2011). हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहबाद : प्रयाग पुस्तक सदन. पृ. सं. 313.

[3] त्रिपाठी, विश्वनाथ. (2018). हिंदी आलोचना. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 32.

[4] मिश्र, कृष्ण. बिहारी. (1977). देव और बिहारी. लखनऊ : गंगा पुस्तक माला कार्यालय. पृ. सं. 73.

[5] वहीं, पृ. सं. 133.

[6] वही, पृ. सं. 136.

[7] वही, पृ. सं. 82.

[8] शुक्ल, आचार्य. रामचंद्र. (2011). हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहबाद : प्रयाग पुस्तक सदन. पृ. सं. 314.

[9] वही, पृ. सं. 292.

[10] वहीं, वही, पृ. सं. 332.

[11] वही, पृ. सं. 144.

[12] वहीं, पृ. सं. 141.

[13] वही, पृ. सं. 142.

[14] शुक्ल, कृष्णशंकर. (1990). केशव की काव्यकला. बनारस : सुलभ पुस्तकमाला कार्यालय. पृ. सं. 15.

[15] वही, पृ. सं. 57

[16] मिश्र, विश्वनाथ. प्रसाद. (2014). हिंदी साहित्य का अतीत. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 36.

[17] त्रिपाठी, विश्वनाथ. (2018). हिंदी आलोचना. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 119

खादी की अवधारणा एवं आवश्यकता

डॉ. पंकज कुमार सिंह[1]

सरांश

स्वा*धीनता आंदोलन में स्वदेशी-स्वायत्त-स्वावलंबी अर्थव्यवस्था का एक सशक्त प्रतीक खादी क्षेत्र विगत वर्षों में एक अजीब दुष्चक्र का शिकार हो गया है। आज जो आर्थिक स्थिति खादी की है वही स्थिति 19 वीं शताब्दी में औद्योगिकीकरण के कारण भारत के वस्त्र उद्योग की थी, जबकि 18वीं शताब्दी तक भारत वस्त्र कला में विश्व विख्यात था। 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में गाँधीजी ने हाथ-कते और हाथ-बुने वस्त्र को 'खादी' के नाम से संबोधित किया, जो आज भी खादी वस्त्र की मुख्य विशेषता है। उन्होंने खादी को वैचारिक और व्यावहारिक रूप दिया, जिससे भारत कम-से-कम घरेलू स्तर पर वस्त्र के लिए विख्यात हुआ। खादी में काम करने वाले सभी नैतिक जीवनयापन करते हैं। अर्थात् समग्र दृष्टि से खादी एक मानवीय मूल्य पर आधारित शुद्ध उद्योग व्यापार है, जिसमें प्रलोभन, लाभ कमाने की होड़ के स्थान पर "ना मुनाफा ना घाटा (No profit no loss)" का सिद्धांत चलता है। साथ ही साथ शुद्धता, सत्यता, पारदर्शिता और उपभोक्ता संरक्षण की दृष्टि से कॉस्ट-चार्ट की पद्धति आज तक अपनाई हुई हैं। इससे स्पष्ट होता है कि खादी की गाँधीवादी अवधारणा आर्थिक कम; वैचारिक अधिक थी। यह शोध पत्र गाँधी और उनके बाद के चिंतन परम्परा पर अधारित है, जो खादी के विकास और विस्तार के लिए प्रयास किया।*

मुख्य शब्द :- गांधी, खादी, चरखा, कत्तिन, बुनकर

प्रस्तावना :-

खादी में अल्प पूंजी निवेश से कारीगरों के निवास स्थान पर रोजगार सृजित करने का सामर्थ्य है। गाँधीजी द्वारा शुरू किया गया खादी कार्यक्रम देश के ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार और अल्प रोजगार प्राप्त लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है। यह उल्लेखनीय है कि लगभग 80% खादी कारीगर महिलाएं हैं और प्रत्येक तीसरा कारीगर समाज के पिछड़े वर्ग से संबंधित है, किंतु प्रशासन में महिलाओं की सहभागिता लगभग 8% होगी। इस प्रकार, खादी कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक सशक्तिकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वास्तव में 'खादी', खादी ग्रामोद्योग कार्यक्रमों के बीच सर्वाधिक कारीगर-उन्मुख कार्यक्रम है। इस संबंध में अन्य कोई भी गतिविधि खादी का मुकाबला नहीं कर सकती। यह गतिविधि समाज के उपेक्षित वर्गों जैसे कि महिलाओं, अनुसूचित जाति और जनजाति अल्पसंख्यकों के लिए अत्यंत उपयुक्त है, चूँकि कोई भी दूसरा उद्योग हमारी जनसंख्या के इस वर्ग तक नहीं पहुंच सकता।

[1] पोस्ट डॉक्टरल फेलो (ICSSR), गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र.
मो. 9823696685; ई-मेल. - gandhikhadi@gmail.com

गाँधीजी के जाने के 7 दशकों की यात्रा में विचार एवं व्यवहार दोनों स्तरों में काफी अंतर आ गया है। इस अंतर को कई स्तरों पर देखा जा सकता है। चरखा संघ या यूँ कहें आजादी के पूर्व की खादी सरकारी सहायता से मुक्त थी। इसका कार्य जन-आधारित और सीमित था, किंतु जो लोग थे वे पूर्णतः विचार और निष्ठा के साथ जुड़े थे। आजादी के बाद 1956 ई. से खादी और ग्रामोद्योग आयोग से सरकारी सहायता प्राप्त होने लगी। सरकार ने खादी के आर्थिक विकास पर जोर दिया। खादी भवन बनाने, चरखा, करघा आदि खरीदने के लिए सरकार ने बहुत अधिक कार्यशील पूँजी दी थी। इसके अलावा बिना ब्याज के भी पैसा दिया, जिससे बड़ी संख्या में नये लोग खादी के काम में आए और संस्थाओं की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी होकर 6000 के पास पहुँच गई थी। हालाँकि इस कार्य के साथ-साथ विचार शिक्षण की योजनाएँ भी चल रही थी; चरखा संघ, सर्व सेवा संघ, गाँधी स्मारक निधि, कस्तूरबा ट्रस्ट के अलावा खादी ग्रामोद्योग आयोग ने भी विचार एवं तकनीकी शिक्षण के कार्य हाथ में लिए, जिससे हजारों कार्यकर्ताओं ने अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षण लिए। किंतु इसमें कर्मचारी निर्मित हुए, कार्यकर्ता या सेवक निर्माण नहीं हुए। इसका एक कारण नई खादी संस्थाओं का तेजी से विकास था, जिसमें प्रशिक्षण का कार्य आधा-अधूरा ही रहा। इसके बावजूद आयोग और खादी संस्थाओं में अध्यक्ष-मंत्री आदि लोग आजादी की लड़ाई से निकले हुए थे, जिससे उन दिनों खादी और ग्रामोद्योग आयोग संजीवनी की तरह काम कर रहा था।

आज कल खादी क्षेत्र में फैशन और सोलर ऊर्जा का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है, इससे एक तरफ फैशन की बदौलत नवयुवकों का रुझान खादी की तरफ बढ़ रहा है तो दूसरे तरफ सोलर ऊर्जा से कत्तिन बुनकर की आमदनी में वृद्धि हो रही है। यह शुभ संकेत है किंतु यह कितना कारगर है?

साहित्य पुनरावलोकन :-

वैदिक काल में माता अपने पुत्र के लिए वस्त्र तैयार करती थीं और साथ ही साथ सुविचारों और सत्कर्मों का उपदेश भी देती थीं; इस आशय के मंत्र इस प्रकार हैं -

"वितन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति।। (ऋग्वेद 5/47/6) (सातवड़ेकर, 1978, पृ. 58)।" इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में वस्त्रोद्योग गृह उद्योग था। समय के साथ यह उद्योग एक जाति विशेष का होता गया। फिर भी नवीं सदी के आरंभ में 'सुलेमान' नाम का एक मुसलमान व्यापारी हिंदुस्तान में आया था। उसने यहाँ के वस्त्रों के संदर्भ में लिखा है कि "इस देश में रूई के वस्त्र इतने बारीक और कौशल के साथ तैयार किए जाते हैं कि उस वस्त्र का बुना हुआ एक चोंगा मुहर की अंगूठी में होकर निकल सकता है। … औरंगजेब की लड़की शाहजादी जेबुन्निसा एक समय इतना बारीक वस्त्र पहने हुई थी कि उसमें उसका शरीर नंगा-सा दिखाई देता था। (मेहता, 1946, पृ.18)।" इतना महीन सूत इस देश में काता जाता था और इतने महीन थान बनते थे कि दियासलाई के बक्से में सारा थान आ जाता था। यह मनगढ़ंत कहानी नहीं है, इतिहास इसका साक्षी है।

औद्योगिकीकरण ने इस स्थिति को उलट दिया। इसी में उपनिवेशवाद का जन्म हुआ। भारत भी एक उपनिवेश बना। कपड़ा सस्ता हुआ किंतु काम छिन गया, तब दिन-प्रतिदिन जमा पूँजी कम होती गई। भारत की न केवल समृद्धि चली गई अपितु भुखमरी की स्थिति आ गई। ऐसे में गाँधीजी को वस्त्र में विचार को समावेश करना पड़ा, जिसे खादी नाम दिया गया। खादी के अर्थशास्त्र में समाज, राजनीति, धर्म और आध्यात्म का सामावेश हुआ और सफल भी हुआ।

गाँधी (2007, पृ.442-444) अपनी आत्मकथा में लिखते हैं, "...स्वदेशी में मेरा विश्वास है, क्योंकि उसके द्वारा हिंदुस्तान की भूखों मरने वाली अर्द्धबेकार स्त्रियों को काम दिया जा सकता है। उनका काता हुआ सूत बुनवाना और उसकी खादी लोगों को पहनाना, यही मेरा विचार है और यही मेरा आंदोलन है (पृ. 457)।"

पांडेय (1997) कहते हैं कि पूँजीवाद और मार्क्स के साम्यवाद में श्रम करना आर्थिक आवश्यकता मानी गई। वास्तव में श्रम करना मनुष्य की सांस्कृतिक आवश्यकता है न कि आर्थिक आवश्यकता। श्रम का प्रतिमूल्य हो ही नहीं सकता। ... गाँधीजी के सर्वोदय समाज में श्रम मनुष्य की सांस्कृतिक आवश्यकता है। (पृ. 118)।"

ग्रेग (1927) अपने पुस्तक में आंकड़े के हवाले से बताते हैं कि हाथ-कताई और हाथ-बुनाई से प्रति आदमी जितना सूत और कपड़ा तैयार होता है, उसकी तुलना में मिल में प्रतिव्यक्ति कताई (सन 1926 के हिसाब से) प्रति घंटा 203 से 236 गुनी अधिक और बुनाई 20 गुनी अधिक होती है। मतलब यह कि अगर दोनों बराबरी का समय देकर मजदूरी करें, तो सूत की मिल का मजदूर 200 से अधिक कातने वालों को और मिल का बुनकर हाथ-करघे पर बुनने वाले 20 बुनकरों को बेकार बनाता है। आज तकनीकी विकास के दौर में यह अंतर और अधिक हो गया है।

कुमारप्पा (1951) पाँच तरह की आर्थिक व्यवस्था को बताते हैं "इन्सान की कमाई का मकसद केवल माद्दी या भौतिक सुख पाना नहीं है, बल्कि अपना नैतिक या रूहानी विकास करना है। अगर उस कमाई से इन्सान की निजी शख्सियत का या उसका नैतिक व रूहानी (आत्मिक) विकास होता है, तब इसका एक जबरदस्त असर हमारे सामाजिक ढाँचे और संस्कृति पर भी पड़ता है। हमारी असली मन्शा एक ऐसी सभ्यता खड़ी कर देने की है, जिसमें एकदूसरे का शोषण न हो और न जिसमें शोषण के बल पर कुछ मुट्ठी भर आदमी ऊँचे दर्जे का माद्दी या भौतिक रहनसहन बिताते हों। (पृ. 63)।" खादी का अर्थव्यवस्था इसी को पूरा करने के लिए है, इसका मुख्य उद्देश्य व्यापार नहीं था, जो आज हो गया है। इसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य का नैतिक व रुहानी विकास करना था।

महादेव प्रसाद (1973) का कहना है, "चर्खा जो पहले गरीबों का सहारा भर था क्रमश: उन्हें अमीरों से मुक्त करने का तथा उच्च वर्ग एवं जनता को नैतिक संबंध सूत्र से युक्त करने का साधन बन गया।

आगाखां के महल से छूटने के बाद उन्होंने उसको नया स्वरूप दिया। वह अहिंसक समाज व्यवस्था के प्रतीक के रूप में सारे संसार के लिए उसका संदेशवाहक एवं अणुबम का प्रतिकार बन गया (पृ. 222)।"

पराग चोलकर (2013) ने अपनी संपादित पुस्तक "खादी: हमारा बगावत का झंडा" की भूमिका में लिखा है, "गाँधी के चरखा केवल रोजगार का साधन नहीं था, हालांकि उस साधन के तौर पर उसका महत्त्व कम नहीं था। बेरोजगारी और दरिद्रता का समाधान उसमें अवश्य निहित था। लेकिन गाँधी के लिए चरखा मुख्यतः अहिंसा का प्रतीक था। न्यास, समता और स्वतंत्रता की निशानी था।"

वर्तमान में खादी-मिशन के संयोजक बाल विजय ने खादी-मिशन (2013) पत्रिका के अपने संदेश में लिखते हैं, "राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की दृष्टि से खादी समग्र गाँधी विचार का प्रतीक है। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता और स्वायत्तता, विश्वहित अविरोधी आत्मसम्मान पूर्वक समृद्धि, स्वावलंबन, आत्मनिर्भरता, गरीब उपेक्षित जनता के साथ एकरूपता अन्याय-अज्ञान-अभाव शोषण से पीड़ितों की मुक्ति प्रकृति और मानव के बीच हार्दिक संबंध और आध्यत्मिक, नैतिक, भावनात्मक सामाजिक आर्थिक विकास के मूल्य खादी में अंतर्निहित है। इन मूल्यों को जमीन पर उतारने के लिए निष्काम, कर्मठ और समर्पित सेवकों के द्वारा संचालित खादी की संस्थाओं का निर्माण किया गया था (पृ. 3) ।"

महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वाविद्यालय, वर्धा के 15 वें स्थापना दिवस के उद्घाटन भाषण में समाजवादी विचारधारा के अनुप्राणित स्वतंत्र चिंतक श्री सच्चिदानंद सिन्हा (2012, दिसंबर 29) ने कहा, "शुमाखर के 'स्मॉलइज ब्यूटीफुल' या गाँधी के ग्राम गणराज्य की अवधारणा, जो किसी वैकल्पिक मॉडल की निर्देशिका होगी, वर्तमान फौजी राष्ट्र-राज्य के किसी मॉडल के साथ तालमेल नहीं बैठा सकती। अंतरिक्ष यानों पर अनुसंधान या परमाणु हथियारों का विकास धरती के संसाधनों का सबसे खरतनाक और निरर्थक अपव्यय है। जरूरत वैसे विकास की है जहाँ प्रकृति के स्वाभाविक रुझान, प्राकृतिक ऊर्जा के प्रवाह और धरती की बनावट के साथ कम से कम छेड़छाड़ हो।" यह सब खादी के अर्थशास्त्र में निहित है।

राजेंद्र प्रसाद (1928) (जो बाद में भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने) ने लिखा, "लोग खादी के लिए अधिक दाम देने तथा उसे जिलाने के लिए पूँजी और आदमी जुटाने की इच्छा दिखला रहे हैं। इसकी चाल कुछ अधिक तेज कीजिए और हमें, अपने स्वप्न का वह प्रिय भारतवर्ष मिल जाएगा, जिसमें कोई बेरोजगार न होगा और इसलिए भूखों मरता भी न होगा। (पृ. 40)"

भरत झुनझुनवाला (2007) के अनुसार, "गाँधी का कहना था कि ब्रिटिश शासन से पीड़ित आम भारतवासी को रोटी की आवश्यकता थी। यह रोटी उसे रोजगार के माध्यम से पहुँचानी चाहिए। ब्रिटिश शासन के सहयोग से रोजगार उत्पन्न करना संभव नहीं था इसलिए यह कार्य चरखे के माध्यम से हो सकता था। ... गाँधी यह नहीं कह रहे हैं कि चरखा ही अंतिम समाधान है। वे सिर्फ इतना कह रहे हैं कि जिनकी वर्तमान इच्छा भोजन की है उनके लिए वैचारिक स्वतंत्रता के भाषणों का कोई अर्थ नहीं है (पृ. 242)।"

ई. एफ. शुमाकर (1977) का कहना है कि समुचित तकनीक ही बेहतर भी है और कारगर भी है। उनका मानना है कि तकनीक ऐसी हो जो श्रम में सहायक हो न कि श्रमिकों को ही विस्थापित कर दें। वे बौद्ध दृष्टिकोण के हवाले से कहते हैं कि श्रम के तीन दृष्टिकोण है, "(पहला) मनुष्य को अपनी क्षमताओं का उपयोग करने व उनको विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए, (दूसरा) उसे अन्य लोगों के साथ काम करके अपनी अहं भावना पर काबू पाने में मदद मिले, और (तीसरा) वह सुंदर जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं व सेवाओं को बना सके (पृ.38)।"

खादी और ग्रामोद्योग के लिए उच्च अधिकार प्राप्त समिति की रिपोर्ट (1994) की महत्त्वपूर्ण सिफारिशों करी। जैसे:- 20 मैट्रिक अंक तक कपास सूत का उत्पादन खादी क्षेत्र के लिए आरक्षित होना चाहिए; सरकार द्वारा छूट बकाये का अविलम्ब भुगतान हो; खादी संस्थाओं के प्रबंध समिति में एक तिहाई सदस्य अनुसूचित जाति/जनजाति, पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यक समुदायों और महिलाओं से लिए जाएँ; संस्थाओं की कुल कार्यशील पूंजी आवश्यकता का आधी सरकार और आधि बैंक द्वारा पुरा करने का सुझाव, शैक्षणिक संस्थानों के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में खादी और ग्रामोद्योगी व्यवसाय को शामिल करने सिफारिश की गई। यह खादी को आर्थिक रूप से मजबूत करने के लिए था, न कि वैचारिक रूप से मजबूत करने की।

दीनदयाल शोध संस्थान (2015), नई दिल्ली के अनुसार खादी क्षेत्र में पुराना 1987 के एक्ट को पुनः प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए और खादी उद्योगमें मशिनिकरण को रोकने के पक्ष में अपना प्रस्ताव पेश किए, जो आज के वैश्विक समाज में नहीं टिक पाएगा।

शोध प्रविधि :-

खादी की अवधारणा और ऐतिहासिक संदर्भ को समझने के लिए **द्वितीयक स्रोत** के रूप में पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन किया गया है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन के लिए **वर्धा शहर** एक सरकारी 'ग्राम सेवा मंडल, गोपुरी' तथा दूसरा गैर सरकारी 'मगन संग्रहालय समिति, वर्धा' के कत्तिन-बुनकरों का चयन **संभावित निदर्शन के 'उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रविधि'** का प्रयोग करते हुए उन सभी कत्तिन-बुनकरों की साक्षात्कार की गई है जो कार्यस्थल पर आ कर सोलर या न्यू मॉडल चरखा से कताई करते हैं।

विश्लेषण :-

साहित्य पुनरावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि खादी के अवधारणा को संक्षिप्त रूप में समझा जा सकता है कि खादी अहिंसक समाज रचना का प्रतीक है; खादी स्वदेशी-स्वावलंबी-स्वायत्त अर्थरचना का प्रतीक है; खादी राष्ट्रीयता का, आजादी का प्रतीक है; खादी अधिकाधिक उत्पादन के बजाय अधिकाधिक लोगों के द्वारा उत्पादन को बढ़ावा देता है। यानी यह करोड़ों लोगों को आंशिक एवं पूर्णकालीन रोजगार देने का साधन है; खादी सादा-जीवन, श्रमनिष्ठा, पर्यावरण को गरिमा प्रदान करने वाला है।

खादी की स्थिति को नीचे क्रमवार रेखांकित किया गया है :-

(1) वर्तमान में 'खादी और ग्रामोद्योग आयोग' अपने मूल स्वभाव से बदल गया है, जिससे खादी संस्थाओं की संख्या 6000 से घटकर 2000 से कम हो गई है। कमी की प्रक्रिया उस समय अधिक हुई जब 1987 के एक्ट को संशोधित कर 2006 में नया एक्ट बनाया गया। पुनर्स्थापन प्रक्रिया खादी की दुश्मन साबित हुई। नौकरशाहों ने अपने सीमित ज्ञान व अनुभव से ऐसी आकर्षक व लुभावनी योजनाएँ, जैसे वर्तमान खादी सुधार कार्यक्रम (के.आर.डी.पी.) योजना के अंतर्गत तैयार की। एशियन डेवलपमेंट बैंक (ए.डी.बी.) की मदद से खादी को और आधुनिक व लोकप्रिय बनाया गया। ऐसा करने के पीछे अच्छी भावना हो सकती है, किंतु कार्यान्विति व लागू करने का तरीका हानिकारक है व खादी गतिविधि के सिद्धांत के विपरीत भी। पीपीपी मोड एवं खादी मार्का उसी योजना का परिणाम है। इन्हीं सब कारणों से खादी मिशन संस्थाओं को आगाह करती है कि आप आयोग से मुक्त हों, किंतु संस्थाएँ चाहते हुए भी मुक्त नहीं हो पा रही हैं। प्रतिवर्ष संस्थाएँ खादी सभा में आयोग से सत्याग्रह की बात करती हैं।

(2) 'खादी और ग्रामोद्योग आयोग' खादी-विचार के अनुकूल योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन नहीं कर पा रहा है। वर्तमान प्रधानमंत्री का खादी पोशाक और अब तक दो बार की 'मन की बात' में खादी की महिमा और उसे अपनाने की अपील ने खादी जगत में आशा का संचार किया हुआ है। आशा है इसका असर खादी और ग्रामोद्योग आयोग की योजनाओं पर भी पड़ेगा। प्रधानमंत्री के अपील से लोगों में खादी के प्रति रुझान बढ़ा है। किंतु खादी संस्थाएँ ऋण तले दबी है यदि 'खादी और ग्रामोद्योग आयोग' खादी संस्थाओं की 2408.02 करोड़ रुपये का ऋण माफ कर दे तो खादी संस्थाओं में एक बार फिर जान आ जाएगी। सरकार के वित्त मंत्रालय एक्स्पेंडीचर ग्रुप और IIBF की रिपोर्टस् यह स्पष्ट कर चुकी है कि संस्थाओं को ऋण भार से मुक्त किया जाए।

(3) खादी संस्थाओं से जुड़े अध्यक्ष, मंत्री, कार्यकर्ता और कत्तिन-बुनकर की माने तो वे खादी में काम करने से संतुष्ट हैं, किंतु खादी और ग्रामोद्योग आयोग की वर्तमान नीतियों से असंतुष्ट हैं। बहुतायत खादी-जन खादी में फैशन और सोलर ऊर्जा का भी समावेश करना चाहते हैं।

(4) न्यू मॉडल चरखा और सोलर चरखा पर कत्ताई करने वाली कत्तिनों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह पाया गया कि न्यू मॉडल चरखा के कत्तिन से सोलर चरखा की कत्तिन शिक्षा, स्वास्थ्य, खुशी, मजदूरी में बहुत आगे हैं। वे सभी सोलर चरखा से ही कत्ताई करना चाहती हैं। सोलर-खादी से कत्तिनों की आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही है। सोलर चरखा खादी क्षेत्र में एक क्रांतिकारी बदलाव ला सकता है। यदि सभी न्यू मॉडल चरखा को सोलर किट से जोड़ दिया जाए। ऐसा करने से जो कत्तिन 3000 रुपये मासिक कमाती हैं, वे 6000 से 8000 हजार मासिक कमाने लगेंगी।

निष्कर्ष :-

खादी आज भी प्रासंगिक है बशर्ते इसमें सोलर और तकनीक का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए। गाँधीजी का खादी के प्रति दो आग्रह थे- एक विकेंद्रित व्यवस्था और दूसरा हस्तकेंद्रित व्यवस्था। वर्तमान

परिप्रेक्ष्य में विकेंद्रीय व्यवस्था तो टिकेगी और जरूरत भी है, किंतु हस्तकेंद्रित व्यवस्था नहीं टिक पाएगी। अतः जरूरत इस बात की है कि खादी निर्माण के विकेंद्रीत किंतु तकनीकी रूप से उन्नत औजार बनाए जाएँ, जो मानव-हाथ को सशक्त और सक्षम बनाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- Gregg, R. B. (1927/1946). Economics of khaddar (2nd ed.). Ahmedabad: Navajivan Publishing House.
- कुमारप्पा, जो. कॉ. (1939/2007). गाँव-आंदोलन क्यों? (दे. कुमार, अनु.) वर्धा: मगन संग्रहालय समिति.
- कुमारप्पा, जो. कॉ. (1948/2007). स्थायी समाज-व्यवस्था. वर्धा: मगन संग्रहालय समिति.
- कुमारप्पा, जो. कॉ. (1951/2010). गाँधी अर्थ-विचार (चौथा सं.). (सुरेशराम, अनु.) वाराणसी: सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
- खादी और ग्रामोद्योग के लिए उच्च अधिकार प्राप्त समिति की रिपोर्ट (1994). लघु उद्योग तथा कृषि एवं ग्रामीण उधोग भारत सरकार , नई दिल्ली.
- खादी मिशन. (2013). खादी सभा विशेषांक. खादी मिशन सेवा ट्रस्ट वर्धा/जयपुर: लेखक.
- खादी व ग्रामोद्योग क्षेत्र : अपार संभावनाएँ और कुछ ठोस कदम. (2015). दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली.
- गाँधी, मो. क. (2007). सत्य के प्रयोग. (का. त्रिवेदी, अनु.) अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
- चोलकर, पराग. (संपा.). (2013). खादी : हमारा बगावत का झंडा. वाराणासी: सर्व सेवा संघ-प्रकाशन.
- झुनझुनवाला, भ. (2007). भारतीय अर्थ-व्यवस्था समीक्षात्मक अध्ययन. (जु. झुनझुनवाला, अनु.) दिल्ली: राजपाल एंड सन्ज.
- पांडेय, प्र. कु. (1997/2000). गाँधी का आर्थिक एवं सामाजिक चिंतन. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशलय दिल्ली विश्विद्यालय.
- प्रसाद, महादेव. (1973/1989). महात्मा गाँधी का समाज-दर्शन (चौथा सं.). (वि. शास्त्री, अनु.) चंडीगढ़: हरियाणा साहित्य अकादमी.
- प्रसाद, रा. (1928). खादी का अर्थशास्त्र. मुजफ्फरपुर: बिहार चरखा-संघ.
- मेहता, बा. भा. (1940/1946). खादी-मीमांसा (दूसरा सं.). नई दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल.

- शुमाकर, ई. एफ. (1977). समुचित तकनीक बेहतर भी, कारगर भी. (भ. पंड्या अनु.) नई दिल्ली: राधाकृष्ण.
- सातवळेकर, श्रीपाद दामोदर. (1922). वेद में चरखा. सातारा: सातवलेकर औंध.
- सिंह, पं. कु. (2016). *खादी का अर्थशास्त्र : एक अध्ययन*. महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा. अप्रकाशित शोध-प्रबंध.
- सिन्हा, स. (2012, दिसंबर 29). विकास का वैकल्पिक मॉडल. महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वाविद्यालय, वर्धा के 15 वें स्थापना दिवस का उद्घाटन भाषण.

American Buddhist Women Activists : Spirituality and Social Action in Tandem

Dr. Siddharth Singh[1]

Abstract

Undoubtedly, the strong presence of women in convert Buddhism owes something to the timing of Buddhism's arrival in North America. Though Buddhists had been present in North America before the 1960's and 1970's, these decades saw the influx of many Asian Buddhist teachers and large numbers of Euro-American converts to Buddhism. These years also marked the emergence of the second wave of feminism. The women most likely to be attracted to Buddhism were not about to play a secondary, supportive role to enable men to study and practice while they provided domestic services. These women insisted that if study and practice were good for men, they would also be good for women, and they took up these disciplines enthusiastically. This coincidence, this lucky timing, has forever changed the face of American Buddhism, and may well have an impact on Buddhism worldwide.

Convert women employed many of the same strategies for dealing with Buddhist male dominance as Christian and Jewish women had used in their struggles. The main tasks were to work towards gender-inclusive and gender-neutral liturgies, to advance women into positions of leadership, and, ultimately, for women to become fully qualified Buddhist teachers. The two former tasks were accomplished earlier and more easily in many communities. The last was more difficult, but now, at the beginning of the twenty-first century, many convert women have become Buddhist teachers as well.

The present paper endeavors to highlight the active role of a few such American Buddhist women who are playing a great role not only in propagating the Buddhist practices like teaching meditation in U.S.A. but also bringing a transformative change into the life of common people by their social actions.

In August 2010, the Dalai Lama made a somewhat astonishing statement[1] that he could be replaced in his leadership role by a woman, even though he clarified that she "should be attractive." Ignoring the howls of feminists about that

[1] Professor, Department of Pali & Buddhist Studies, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.), India. E-mail : ssinghbhu@gmail.com

last bit, in his remarks Tibet's exiled spiritual leader did break with long-held traditions of sexism and gender discrimination within Buddhism.

Although many people believe Buddhism is an "egalitarian" religion, the fact will remain that sexism/gender bias has been a very integral part of the faith for many centuries. Overall, there is less virulent anti-woman bigotry within Buddhism than many other religions, especially the Abrahamic cults of Judaism, Christianity and Islam, but misogyny and chauvinism have been apparent enough in the Eastern faiths as well, including the Buddhist.

There is historical evidence that the order of Buddhist nuns survived and thrived in India for fifteen centuries. During the third century BCE, the daughter of Emperor Asoka, who was named Sanghamitra, was invited to Sri Lanka to conduct the ordination of Queen Anula and hundreds of Sri Lanka women who wished to become nuns. Arriving from India with a sapling of the *bodhi* tree, she established the Bhiksuni Sangha that continued to exist in Sri Lanka until at least the ninth century CE. The lineage of full ordination for nuns was transmitted to China in the fifth century CE, when a *bhiksuni* named Devasara set out on a two-year journey to Nanjing. In the year 433 CE, she and her companions conducted a *bhiksuni* ordination ceremony for hundreds of Chinese nuns. This was the beginning of the Bhiksuni Sangha in China that spread to Korea, Vietnam, and Taiwan, and continues to the present day. In the past few decades, Buddhist women from Sri Lanka and other countries have begun to revive the Bhiksuni Sangha in their own traditions by receiving full ordination from the *bhiksuni* lineages that have continued in those countries over the centuries.

Vinaya rules were created some 2,500 years ago, and though faithfully observed by women monastics for centuries, are now being examined in the light of the 21st Century, with the intent to honor the equal rights and capacity for awakening of both men and women. Although it has not been typical for women to have positions of authority within traditional Buddhism, in our time, we are seeing a dramatic and positive change for women in all Buddhist orders. For example, I believe there are more women roshis (Zen masters) in the United States than there are in Japan. In the United States, more and more women find themselves head of monasteries and Buddhist institutions. And women are setting policies in place that guarantee practitioners' ethical treatment, honor families, insure democratic processes in their organizations, and are dedicated to environmental justice and social engagement.

The noted American Buddhist women activist Joan Halifax says that women are receiving transmission in our era is an extraordinary shift away from a patriarchal religion toward a religion that honors gender parity, and practices what it preaches

about inclusivity. This bodes well for Buddhism and all religions, as women have much to contribute to the psycho-social body of religion, as well as the philosophy, ethics, and practices that ground religious institutions.

She further claims, "As a Western woman and a Buddhist, my own work is not only in the West but in the East as well. I, like some of my sister practitioners, return to Asia, year after year. We go as ordained Buddhist priests, practitioners, and nuns to share with Asian men and women the relevance of Engaged Buddhism in our world today. I do not take for granted the responsibility that my sisters and I have in carrying the dharma into diverse and fairly inaccessible worlds, from remote hospices and clinics in India and Nepal, to refugee communities in Thailand and the Americas. We also find ourselves invited to such places as the United Nations, the World Economic Forum, and renowned Buddhist universities in Asia and the Americas to present our views regarding modern Buddhism, a Buddhism that is grounded in the essential teachings of the Buddha, but one that is socially engaged, systems-based, and environmentally active."[2]

Buddha said, "My Dharma is against the stream". Halifax believes that the women who have been given the opportunity to teach in countries other than their own have had the wonderful chance to push the river of gender parity in the right direction, toward women's rights, including the right to fully ordain and to be fully authorized at the highest level by their schools of Buddhism. They also have been given the opportunity to challenge the relevance of Buddhism as it relates to modern life in our profoundly imperiled world, and to set in place educational programs, policies and projects that are focused on social as well as personal transformation, places like Upaya Zen Center in New Mexico or the International Women's Partnership for Peace and Justice and its BEST program in Buddhist Education in Social Transformation.

The sheer diversity of forms of Buddhism practiced in North America makes it difficult to generalize about women's issues in Buddhism. Every denomination of Buddhism is represented in North America; Southeast Asian, Vietnamese, Tibetan, Korean, Chinese, and Japanese varieties of Buddhism are all practiced here. Some Asian forms of Buddhism, especially Japanese and Chinese, have been practiced in North America for four or five generations. Many Buddhists of other nationalities arrived only recently, after changes in immigration policy in the 1960's facilitated immigration from Asia.

In addition, a significant number of North Americans with no Buddhist antecedents have converted to Buddhism since the late 1960's. Initially, these converts expressed countercultural dissatisfaction with Euro-American religion and culture, and responded to the many Asian teachers who began to reach out to non-

Asian audiences. Now, at the beginning of the twenty-first century, convert Buddhists from ethnic groups not traditionally associated with Buddhism have become part of the American religious landscape. This development adds even more complexity to North American Buddhism, for their concerns as Buddhists are often quite different from those of traditionally Buddhist populations.

Many observe that for immigrant Buddhists, no matter how many generations they have lived in North America; Buddhism is a conservative force, promoting links to and memories of their Asian cultures and ancestors. Usually, they express little dissatisfaction with Buddhism as they have received it and have little interest in "Americanizing" Buddhism.

For converts, becoming Buddhist was part of their protest against conventional American values. But converts have no loyalty to Asian cultural forms either, and often find the traditional forms that encase Buddhism awkward at best. Those curious and radical enough to leave behind an inherited religion often will not hesitate to bring a similar spirit of exploration to their new religious identity. Convert Buddhists have done just that, developing approaches to Buddhist thought and practice that are distinctive to the West. For this reason, Rita M. Gross says, rather than because of the ethnicity of its practitioners, the term "American Buddhism" is used to describe convert Buddhism.[3]

Throughout its long history, Buddhism has crossed many cultural frontiers and taken on forms distinctive to each culture. These new Buddhist forms have been developed by indigenous people who became Buddhists, not by the travelers and missionaries who brought Buddhist teachings into a new home. In the same way, it is natural that eventually an "American Buddhism" will evolve, and that convert Buddhists will play a massive role in this development. At the beginning of the twenty-first century, the "Americanization" of Buddhism is a controversial topic. But observers agree that the Americanization will include different roles for women than have been traditional in Buddhism, and that convert women will play a large part in these developments.

To date, the way in which American lay practitioners, who also have jobs and families, have attempted to pursue the time-consuming disciplines of study and practice is their most radical departure from Asian models. For converts, Buddhism is study and practice; they have largely ignored other aspects of Buddhism developed in Asia.

Another striking departure is the way in which women participate in American Buddhism. Some Buddhist commentators claim that providing models of more equitable participation of women is the special karmic task of Western Buddhism.

American Buddhist women and men have taken up this task, and already American Buddhist groups look quite different from their Asian counterparts regarding the visible, active presence of women in meditation centers and other Buddhist forums. Some observers claim that this is the most noticeable difference between Asian and American Buddhist meditation centers. This claim is meant not only to draw attention to the presence of women but also to the faithfulness with which Americans have reproduced most other aspects of a traditional meditation center. The iconography is the same and the meditation practices are the same; often the liturgies are chanted in Asian languages, and, in many cases, people wear Asian robes during meditation. But women practice side by side with men rather than being isolated in an underfunded women's practice center that has no prestige.

Undoubtedly, the strong presence of women in convert Buddhism owes something to the timing of Buddhism's arrival in North America. Though Buddhists had been present in North America before the 1960's and 1970's, these decades saw the influx of many Asian Buddhist teachers and large numbers of Euro-American converts to Buddhism. These years also marked the emergence of the second wave of feminism. The women most likely to be attracted to Buddhism were not about to play a secondary, supportive role to enable men to study and practice while they provided domestic services. These women insisted that if study and practice were good for men, they would also be good for women, and they took up these disciplines enthusiastically. This coincidence, this lucky timing, has forever changed the face of American Buddhism, and may well have an impact on Buddhism worldwide.

The Buddhism that American women initially encountered seemed paradoxical to them. On the one hand, the basic teachings were gender-free and gender-neutral, and many found the practice of meditation not only gender-free but intensely liberating. To many feminist women of the 1960's and 1970's, Buddhism and feminism seemed to be allies, for good reason.

On the other hand, the forms through which these teachings and practices were delivered were as male dominated as those of any other religion. The teachers and other leaders were, for the most part, men. Male language abounded in the liturgies, at least those that were translated into English. And, though the basic teachings were gender-free and gender-neutral, deeper explorations into the traditional texts revealed misogynistic passages as well as a strong overall tendency to favor men over women in matters of study and practice. Many women encountered criticism and were ostracized for pointing out these facts. They were told that the dharma is beyond gender and that women were being overly sensitive and divisive when they were bothered by misogynistic stories or institutional male dominance.

The issues faced initially by convert women could be divided into two major areas of concern. They faced the problem of finding their way in a tradition that, by and large, had not been especially concerned with women's participation in its most valued institutions—the worlds of study and practice. And convert women faced the problem of trying to integrate their traditional feminine pursuits with their desire to participate fully in the worlds of study and practice.

Most convert women who began to practice Buddhist meditation and to study Buddhist teachings in the 1960's and 1970's probably were not immediately aware either of the historical significance of their activities or of traditional attitudes toward women. Though gender practices were very different in their Asian homelands, the Buddhist teachers who came to teach in North America did not treat women students differently from men.

That these teachers worked with women students largely without prejudice is one of the more remarkable facets of this story. Asked later why they did not apply the more familiar Asian Buddhist norms and expectations regarding gender in North America, they gave two reasons. First, the women students asked for teachings, and that a student ask to be taught is the most important requirement. Second, given that women participated along with men in Buddhist gatherings, they assumed that North American gender norms were different from Asian norms. The lucky coincidence of feminism and the arrival of Buddhist teachers must be noted again, for if these teachers had arrived ten or twenty years earlier, in the 1950's, the situation would have been very different.

Nevertheless, women noticed the prevalence of men as teachers and other Buddhist authorities, and the androcentric (male-centered) language of most liturgies. Those who knew more about Buddhist history and traditional teachings were troubled by teachings concerning the spiritual inferiority of women and their inability to attain liberation until they were reborn in a man's body. However, until they had received sufficient training in the various Buddhist disciplines, women were in a poor position to challenge these views or to suggest alternatives.

Fortunately, women teachers are becoming more common among convert Buddhists. It takes many years for a student of Buddhist meditation and philosophy to become qualified to teach, and the first students to be authorized by their Asian teachers to teach the dharma were men. But, especially among practitioners of Zen Buddhism and Vipassana meditation, women were authorized to teach relatively soon after men. Only among practitioners of Tibetan Vajrayana Buddhism are almost no women teachers found, but almost no convert men have been fully authorized as teachers either. Many observers comment that convert practitioners of Tibetan Buddhism are about a generation behind practitioners of Zen and Vipassana in

becoming fully trained as teachers. In recent gatherings of Western Buddhist teachers, nearly half the teachers present were women, ample indication that American Buddhism may indeed be fulfilling its potential to address some of Buddhism's long-standing difficulties.

Even though study, practice, and teaching are at the forefront of many Buddhist women's concerns, many convert lay practitioners are also involved in family life and therefore have unique concerns relating to that part of their lives. This activity presents different challenges to women practitioners: how can one combine child care with the demands of practice and study? Traditionally, this question did not arise because most practice was done by men; the women who practiced seriously were almost always nuns, childless by definition.

A little introduction of a few renowned American Buddhist women activist wouldn't be frivolous in order to learn how they are remaking the scenario of Buddhism in the whole world by their action.

Diana Winston :

One of the avenues for Buddhists to use to be involved in the social issues is through the Buddhist Peace Fellowship's Buddhist Alliance for Social Engagement (BASE) program, started by a woman named Diana Winston.

By the time Winston was twenty-six, she had been practicing Vipassana for several years, but had begun wondering what her next step in life ought to be. Struck by the importance of putting together social action, service, *dharma* practice and community, she proposed the creation of the BASE program under the umbrella of the Buddhist Peace Fellowship. What began as an experiment in "fusion of Western social-change wisdom…with Eastern *dharma* wisdom"[4] has become a strong network of socially-engaged Buddhists around the country. According to its website, "BASE provides six months of support communities for the study and practice of socially engaged Buddhism. Participants work or volunteer in service or social action, and meet regularly for study, support, discussion, training, and meditation. Groups have weekly meetings and monthly retreat days."[5] These groups are either location-based or formed around interest groups—for example: there are San Francisco-based groups, aging-focused groups, Spanish-speaking groups and prison reform groups. BASE is known as the first Buddhist volunteer service organization, a kind of urban Buddhist peace corps. [6] BASE is a way for Buddhists to be trained, sustained and active in social reform movements. Since its formation in 1995, BASE has worked with over 200 people. In August of 2006, BASE added four more groups to its network. While Winston is no longer the coordinator of BASE programs (she now works with *ThinkSangha,* a Buddhist think-tank for Buddhist social issues), she

continues to "share the socially engaged dharma, reminding the *sangha* members that the meditative practice and the world out there don't make strange bed-fellows."[7]

Joan Halifax :

She is an American Zen Buddhist Roshi, anthropologist, ecologist, civil rights activist, hospice caregiver, and the author of several books on Buddhism and spirituality. She currently serves as abbot and guiding teacher of Upaya Zen Center in Santa Fe, New Mexico, a Zen Peacemaker community which she founded in 1990. Halifax-roshi has received Dharma transmission from both Bernard Glassman and Thich Nhat Hanh, and previously studied under the Korean master Seung Sahn. In the 1970s she collaborated on LSD research projects with her ex-husband Stanislav Grof, in addition to other collaborative efforts with Joseph Campbell and Alan Lomax. She is founder of the Ojai Foundation in California, which she led from 1979 to 1989. As a socially engaged Buddhist, Halifax has done extensive work with the dying through her Project on Being with Dying (which she founded). She is on the board of directors of the Mind and Life Institute, a non-profit organization dedicated in exploring the relationship of science and Buddhism.

In 1979, Halifax founded the Ojai Foundation, an educational and interfaith center. In 1990 Halifax founded Upaya Zen Center located in Santa Fe, New Mexico. The center offers Zen training, in addition to various courses and retreats on topics such as engaged Buddhism and caring for the dying. According to author Sarah Buie, Upaya is, "...a residential and teaching center on the outskirts of Santa Fe on the site of earlier Buddhist communities. While proceeding in an organic and incremental way, integrating existing structures into the Upaya campus, Joan's vision for its present form has been comprehensive. It is based on her deep understanding of the consonance of mind and spatial expressions. She considers our condition of interrelatedness and interdependence (ties to ancestors and traditional uses of the land, natural cycles and resources, placing sites within the local topography of mountain and river, the interdependence of exterior and interior spaces, and relationships with the community itself) in the design choices she has made. Caring stewardship of the land and its resources has been a constant factor in the development of the site.

As has already been noted, Joan Halifax has done extensive work with the dying over her career. Professor Christopher S. Queen writes—in the book *Westward Dharma* (edited by Charles S. Prebish and Martin Baumann), "She teaches the techniques of 'being with death and dying' to a class of terminally ill patients, doctors, nurses, lovers, family, and friends. She speaks calmly, with authority. In a culture where death is an enemy to be ignored, denied, and hidden away, Joan physically touches the dying. She holds them, listens to them, comforts them, calms them, and eases their suffering by any means possible. She shares their thoughts and fears; she

feels their last shuddering breaths, holding them in her arms. She travels easily from church to synagogue, hospice to hospital, dispensing techniques and training born of Buddhist traditions and beliefs in a culturally and spiritually flexible manner.

Joanna Macy :

Macy travels giving lectures, workshops, and trainings internationally. Her work, originally called "Despair and Empowerment Work" was acknowledged as being part of the deep ecology tradition after she encountered the work of Arne Naess and John Seed, but as a result of disillusion with academic disputes in the field, she now calls it "the Work that Reconnects". Widowed by the death of her husband, Francis Underhill Macy, in January 2009, she lives in Berkeley, California, near her children and grandchildren. She serves as adjunct professor to three graduate schools in the San Francisco Bay Area: the Starr King School for the Ministry, the University of Creation Spirituality, and the California Institute of Integral Studies.

Joanna Macy is one of the world's leading sustainability educators. Macy shares her knowledge and wisdom through her books, workshops, courses, and talks. She explores the challenges we are facing and shares communal resolutions to explore to strengthen a life-sustaining culture. The workshops Macy teaches are on Business Sustainability, Spiritual Ecology, Meditation, Responses to Climate Change, Wisdom of the Elders, and Tips for Activists. Many book's Macy has written have a website accompanying them which readers can explore, take a course, and use other tools to aid in their training. On Macy's website for her (and Chris Johnstone's) book Active Hope, How to Face the Mess We're in Without Going Crazy, she summarizes the practice which sustains an Active Hope: 1. Take in a clear view of reality 2. Identify our vision for what we hope will happen 3. Take active steps to help bring that vision about.

Pema Chödrön :

Pema Chödrön is a member of The Committee of Western Bhikshunis, and is a leading exponent of teachings on meditation and how they apply to everyday life.

She is widely known for her charming and down-to-earth interpretation of Tibetan Buddhism for Western audiences. Pema is the resident teacher at Gampo Abbey, Cape Breton, Nova Scotia, the first Tibetan monastery for Westerners and has authored many books.

We always have a choice, Pema Chödrön teaches: We can let the circumstances of our lives harden us and make us increasingly resentful and afraid—or we can let them soften us and make us kinder.[8] Here Pema provides the tools to deal with the difficulties that life throws our way so we can wholeheartedly accept ourselves and others, complete with imperfections and stay in the present moment by seeing through strategies that cause us to resist life as it is, tap into our natural

reservoirs of humor, flexibility, courage, and wisdom and courageously move toward what makes us feel insecure in a way that opens our heart and connects us with others.

Conclusion :

Most American women who embraced Buddhism and began to practice Buddhist meditation and to study Buddhist teachings in the 1960's and 1970's probably were not immediately aware either of the historical significance of their activities or of traditional attitudes toward women. Though gender practices were very different in their Asian homelands, the Buddhist teachers also, who came to teach in North America did not treat women students differently from men.

As we survey the issues important to Buddhist women, it is easy to see why people have such drastically different impressions of Buddhism in America. The public face of Buddhism as seen in its Asian cultural context is very male-dominated, so much so that many women would not consider exploring Buddhism because it is clear to them that Buddhism is just another sexist religion. Others who have explored Buddhism more personally have found Buddhism so intensely liberating that they devote much of their life to its study and practice.

Paradoxically, both impressions are correct. Buddhism has been quite disadvantageous to women, and yet Buddhism can provide freedom, dignity, and peace to women. It all depends on how Buddhism is practiced, and much of that depends on the initiative, courage, and imagination of women practitioners, especially those who pioneer a gender-neutral and gender-free way of understanding and practicing Buddhism. These women practice a middle path of neither ignoring obvious sexist practices in Buddhism nor being so alienated by that sexism that they abandoned Buddhism. We will need to stay on that middle path for some time to come. It would be naive to assume that Buddhist patriarchy is gone for good in such a short period of time, given patriarchy's venerable place in Buddhism throughout its history.

References :

[1]. Murdock, D.M. (2013, Oct. 7). *Women in Buddhism.* examiner.com. http://www.examiner.com/article/women-buddhism

[2]. Halifax, Joan. (2013, March 8). How women are remaking Buddhism.*Washington Post* http://articles.washingtonpost.com/2013-03-08/national/37546354_1_buddhism-women-buddhas

[3]. Gross, Rita M. (2014, April 14). How American Women Are Changing Buddhism. *Sambhala Sun*.

http://www.shambhalasun.com/index.php?option=com_content&task=view&id=1319

[4]. Loundon, Sumi. (ed.). (2001). *Blue Jean Buddha: Voices of Young Buddhists.* Massachusetts: Wisdom Publications. p. 182

[5]. Buddhist Peace Fellowship. (2018, June 5). *BASE Introduction*. http://www.bpf.org/html/current_projects/base/base.html

[6]. Queen, C. S. (2000). *Engaged Buddhism in the west*. Boston, Massachusetts: Wisdom Publications. p.61

[7]. Ibid, p.63

[8]. Teachers: Pema Chodron. (2016, Feb. 12) *DharmaNet Market*. DharmaNet International. http://www.dharmanet.org/market/booksPema.htm,

Gujarati Siddis through the Ages

Manish Karmwar[1]

Abstract

Siddis (Indo-African) community of Dharwad and Belagavi districts is included in the Scheduled Tribes (126 Amendment, Nov.2019) and recently three Siddisyouths were beaten by some locals in Veraval of Gir Somnath district. These episodes force me to write about Siddis in different parts of India to understand their assimilation process in local cultures and how they preserve bit of homeland appearance as well. We have to have restrain and condemn all these incidents because they are our cultural heritage to develop a genuine understanding of Vashudhaiva Kutumbakam. The Siddis are spread across Karnataka, Maharashtra and Gujarat. Over the decades, they have made the forests along the western coast their home. The Siddis were people of African origin who reached the shore of western India either brought by the Arab traders or Portuguese and other seafarers through Indian Ocean trade. Migration of Africans to India, both free and forced has gone on for several centuries. Study of the African diaspora is now a dynamic field of research in the area of history. They came as migrants, traders and sometimes, as slaves and were absorbed in the military and administrative services. Their involvement in the court-politics increased so much sometimes that they emerged as king-makers also. In the Janjira and Sachin kingdoms they rose from king-makers to Emperors. This paper draws attention to the Siddis and their role, place and nature of assimilation in Different parts of Gujarat. This paper would decipher and discuss the real time challenges of Siddis in India.

Keywords : Assimilation, Cultural heritage, Diaspora, Gujarat, Indian Ocean, Siddis.

Introduction :

Major African Settlements in India concealments in States like Gujarat, Maharashtra, Karnataka and Telangana. According to 1981 census, the population of Siddi was 54,291. In Gujarat, with approximately twelve thousand population they are found in the districts of Surat, Ahmedabad (Taluka Ahmedabad city), Amreli (Rajula, Kondinar), Jamnagar (Jamnagar, Kalyanpur), Junagadh (Junagarh, Talala, Veraval, Una), Rajkot (Rajkot, Gondal), and Bhavnagar, Bharuch (Ratanpur) and the former kingdom of Kutch. Junagarh is most populated district amongst all. These villages connected to Siddis in this district are Talala, Jambur, Madhpur, Moruka

[1]Assistant Professor, History, SLCe, D.U.

Barvav, Vadva,Veraval, Mangrol, Una, Khilavad, Bilkha and Mendarda. In Karnataka district of Uttar Kanara comprises 11 talukas and out of 11, the talukas of Ankola, Yellapur, Sirsi, Mundgod, Joida, Karwara and Haliyal consists of large number of Siddi settlements and also in Khanapur of Belgaum and Kalagatgi of Dharwad district. These villages are connected to Siddis in Karnataka Allur, Baagavati, Garadolli, Haliyal, Jataga, Siddapur and Wada (Haliyal), Acchhave, Doddaketta, Higgar, Kammani, Kodigadde and Wondermane (Ankola), Basarijade, Kedilgere, Ugginakeri (Mundgod), Devanahalli, kakklli, Mattigatta and Vanalli (Sirsi), Eranolli (Joida), Kaashirawada (Karwara) and in maximum villages out of 126 in Yellapur talukas. In Maharashtra they are settled in Raigad district. In Telangana Hyderabad is the most vital centre for siddis population. There are evidences of African's role in socio-political and military life during the period of Delhi sultanate, Nizamshahi, Adilshahi, Qutbshahi, Imadshahi, Mughal India and Hyderabad till India's independence.

Numerous Africans mark an imperative role in different Indian reigns. The first African, of whom there is historical record, was probably Jamal al-Din Yaqut, royal courtier in the kingdom of Delhi, in the north of the sub-continent. Some of the Africans who rose to positions of substantial reputation were: Malik Kafur, Malik Ambar, Malik Sarwar, Mubarak Shah, Ibrahim Shah, Malik Andil, Malik Sandal, Yaqut Dabuli Habshi, Ikhlas Khan, Dilawar Khan, Khavass Khan, Ulugh Khan. Their role in the History of India is Noteworthy. The Africans, who arrived in Hyderabad, Deccan, apart from playing their traditional role as bonded guards and servants, were recruited as the Nizam's private bodyguard. The African Regiment was retained until 1948. In the Janjira and Sachin kingdoms they rose from king-makers to Emperors. The African presence in Indian history and culture provides the primary framework for the present work.

Historicity of Siddis in Gujarat

The historical source for the study of African presence in Gujarat are diverse by and large about the same time as the appearance of Joseph E. Harris(1971) has made an invaluable contribution to the ongoing discovery of Africa's central role in human history through The African Presence in Asia: Consequences of the East African Slave Trade. The first serious sociological survey of the Siddis of Gujarat appeared in 1967 through census of India 1961. Harris work opened up a new way of thinking of Africans presence in Asia though the work of Banaji (1932)[1], Pankhurst (1961)[2], Shyam (1967)[3] and Tamsakar (1978)[4] have provided a primary study for Harris. Several Research followed the path of past study with various new ideas most significant are Patel (1971)[5], Alpers (1976)[6], Pescatello (1977)[7], Khalidi (1989)[8], Gupta (1991)[9], Chauhan (1995)[10], Ali (1996)[11], Baptiste (1998)[12], Catlin (2004)[13], Robbins (2006)[14], Jayasuriya (2003)[15] and Hiremath (1993)[16], Micklem (2001)[17], Karmwar (2010)[18] and Bhatt (2017)[19] published a general study on the Siddis.

Trade between East coast of Africa and West coast of India

Undoubtedly, links India with East Africa through the ages and the descendants of early traders who had settled and intermarried with other races over the years form an important cluster of the ethnic grouping at various places. However, all the settlers did not come to India on their own. Many were brought as slaves for several centuries and their history is indeed a tale of sufferings on one side, the colourful episode of their rise and fall on the other. Nevertheless, some of them played unexpected, crucial and unique roles in shaping the history of the regions.[20]

Indo-African trade relations are one of the very important segments among others to understand African settlements in different parts of Indian sub-continent. The evidence of African trade in India dates back many centuries. Archaeological sites trace the earliest relation between these countries and provide evidences to support their trade related bond. Archaeological excavations at the site of Rojdi in Gujarat have revealed the presence of domesticated grains that had their origin in Africa. These include finger millet dating around 2500-2300 BC.[21] There are ancient sites in South Asia which have yielded evidence for the prehistoric production of Jowar of African origin. Jowar was grown at Pirack in the earliest period dating back to circa 2000 B.C. There are sufficient grounds to prove the African origin of the millet also, though non-biological evidence is lacking for contact between India and Africa during or prior to the Second millennium. The only possibility that emerges is the direct connection across the Indian Ocean and the Arabian Sea. Since the overland route to India could not be of any practical use, there is a reason to suppose that proto-historic maritime activity connecting the Indian sub-continent to Mesopotamia was fairly wider in scope than the available historical records reveal. In 2000 B.C., Indian cotton was widely in use in Mesopotamia where Indian traders had their settlement. Sesamum, wheat, rice was exported to East Africa from India. In Gujarat, at Lothal harbour structures have been found of that era confirming the existence of port and dockyard facilities on the Indian side of the trade route where ships could load and unload their goods. Therefore, it can be conclusively averred that the earliest trade in the Indian Ocean existed between the Gulf and Western India, especially Gujarat, Cutch and Sind in and around 2000 B.C.[22] From ancient times, providence had been 'kind to India' which enjoyed a superabundance of three valuable export commodities which were prized in Africa: pepper, silk and cotton. Of all the spices pepper, he thought, was rightly considered the 'greatest friend to the health of man'; 'nowhere known but in India', it grew 'spontaneously, and was gathered without toil'.[23] The Periplus has little to say about the exports of Adulis and sums them up briefly as 'ivory, tortoiseshell and rhinoceroshorn. Pliny, on the other hand, relates that the port traded in a large quantity of ivory, rhinoceros-horns, hippopotamus-hides, apes and slaves. All these ports along the coast of the Horn of Africa were of international fame and were visited by vessels which either sailed there expressly or else exchanged their cargoes there while journeying along the

neighbouring coast. Trading ships came both from Egypt whence they set forth every year in July, and from the ports between Ariaca and Barygaza on the north-west coast of the Indian sub-continent. These vessels brought the products of their own lands, such as wheat, rice, clarified butter, seasame oil, cotton cloth, girdles, and sugar, which the Periplus terms 'honey from the reed called sacchari'. The exports of these lands to the south of present-day Ethiopia included a little palm-oil and a great quantity of ivory, though inferior to that of Adulis, rhinoceros' horn and tortoise-shell, which, the Periplus says, was second only to that of India.[24]

India had first trade with Arab then Portuguese through whom Africans came in contact. The forced migration of Africans from the African Continent into India went up only in the 6th century A.D. when the Arabs expanded their trade with India. After the emergence of Islam on the world scene and conquest of Persia by the Arabs in the 7th century, the Arab merchants tried to control the oceanic trade of the Konkan ports. The Arabs had not only monopolised the early carrying trade between Arabia and Malabar, but had also made several settlements on the Malabar and Konkancoasts. Much before the arrival of the Portuguese in India, a significant number of African slaves had already occupied the seats of power, not only in armies and naval forces of various rulers, but also in civil administration. The Abyssinian immigrants here gained opportunities, unequalled elsewhere, for displaying their rare capacity for sea-faring, land-warfare, management of men and civil administration. They were no longer household slaves and palace eunuchs as was the case in North or in the territories controlled by the Portuguese, but Regents of kingdoms, Generals of armies, Admirals of fleets, and Viceroys of provinces.

Tracing the route

Tracing the routeis, perhaps, a bit exaggerated according to Helena Basu who wrote a wonderful chapter in Amy Catlin's book 'Sidis and scholars' in 2004. She mentioned in this interview that there are quite a few good historical studies about the East African slave trade and its range in the Indian Ocean world, which give some clues about the areas from where slaves were drawn as well as about the geographical shifts of the recruitment areas over time. They also tell us that the numbers of the slave trade never even approximated those of the transatlantic slave trade from West Africa to the American continent. In the 13th and 14th centuries, slaves were mainly drawn from lower Egypt, Ethiopia, Somalia and Sudan - the Nile area. Many of them ended up being so-called `slave-soldiers' in the armies of conquerors and Sultans all over the Islamic world. After the 16th century, when the Europeans, specifically the Portuguese, entered the scene, slave-trade routes moved further south along the East African coast, as far as Mozambique. Slaves were drawn from the hinterland of the coastal regions, such as inland Tanzania, Malawi or even the Congo.In the 19th century, Zanzibar emerged as the hub for the distribution of African slaves mainly to Arabia, southern Persia and western India. About three

quarters of the population of Zanzibar consisted then of slaves serving the aristocracy and wealthy traders. Even after the nominal abolition of the slave trade by the British, a small number of male and female African slaves continued to be shipped to the western coasts of South Asia, especially to Makran and Gujarat, where they were mostly employed as servants and bodyguards at the courts of local rulers.[25]

Journey of Siddis in Gujarat

Pre-colonial Gujarat under Muslim domination was, at least in its coastal urban centres, rather cosmopolitan. The lively interaction between people from diverse social and cultural backgrounds involved in overseas trade not only entailed the violence of slavery but also resulted in a great heterogeneity of local populations all along the countries bordering the Indian Ocean. Arab traders settled in India; Gujarati merchants settled in East Africa. After their arrival in India, many Sidi were employed by traders as domestic servants and thus remained in the heterogeneous urban milieu of Gujarat. Across the ocean, Gujaratis "virtually monopolised overseas trade in east Africa, collecting gold and ivory and slaves in exchange for their cloths".[26]

Since the thirteenth century and after the rise of Muslim power, Gujarat's large and small ports; Surat, Bharuch, Cambay in the east, Mundra and Mandvi in the west (Kacch) - were increasingly engaged in overseas trading relationships with similar ports along the countries bordering the shores of the Indian Ocean. From the fourteenth century onwards, Arab and Portuguese sources make repeated mention of the slave- trade carried on by traders in Kilwa and the selling of black slaves to India and other places in Asia. The merchant town of Cambay was then the major port of the Sultanate of Delhi and one of the major ports as was Mundra in Kacch some centuries later through which African slaves reached Indian soil. In the fourteenth century, a regular market (nakka) for the selling of slaves was held in Cambay. In the mid- sixteenth century, after the Portuguese had conquered Goa, they maintained a regiment at Diu, a port on the shore of the peninsula of Saurashtra, consisting of 600 Africans as soldiers. In the eighteenth century, Muscat be- came a flourishing centre of the slave-trade, providing slaves to Arab societies along the coast of the Persian Gulf. From Muscat and, later, Zanzibar an estimated number of ten thousand slaves were annually dispersed to the Middle Eastern world. 39 A small number of these slaves reached western India as well, through a port either in Sindh, Kacch or in South Gujarat.[27]

In the nineteenth century the British campaign against the Arab dominated slave-trade met with resistance. Gujarati merchants settled on the Swahili coast proved to be as averse to the abolishment of slavery as Arab traders. Almost 6,000 slaves were in possession of Indians in East Africa. In the late 1860s the slave-trade was formally abolished by the British, although in Saurashtra und Kacch the selling

of slaves continued till 1936. The British attempted to enforce their policy by controlling Arab and Gujarati slave ships (dhows) for the transport of slaves.[28]

Hence, the comparatively a smaller number of African slaves reaching west coast of India till the early 20th century were generally displaced individuals. In Saurashtra region of Gujarat, the importation of slaves was acknowledged unlawful as late as 1936. Till then, Africans arrived in Gujarat individually or in low numbered. At this point, they were working at local royal courts or by rich traders like other domestic servants of low status. Relatively, noble Siddi fused themselves in elite class of Muslims of past rulers.

A second medium of African influence was also tied intimately to the history of Islamic expansion. This impetus was both commercial and proselytizing, a common story in the global dissemination of the faith. One example of this convergence is found in the figure of BavaGor. A series of shrines extending from send to Gujarat are dedicated to him. Local traditions indicate that BavaGor was a Muslim Abyssinian who came with several family members perhaps by way of Arabia to this area in about the 14th century. BavaGor is clearly associated with the introduction of Islam in western parts of India and its shrines are dedicated to his memory as a Muslim *Pir* or Saint. The tomb of BavaGor at Ratanpur makes this the most important dargah among the entire shrine dedicated to his cult. It remains an important pilgrimage site to this day. BavaGor is also said to have introduce the agate bead trade to this part of western India.[29]

African Kingdoms: Janjira, Sachin And Jaunpur

Two African kingdoms survived in India until the independence of India. These were Janjira in Maharastra and Sachin, in Gujarat. The Jaunpur sultanate an independent kingdom in what is present day Uttar Pradesh was founded by Firuz shah Tughalaq in 1306 AD. Malik sarwar a eunuch and formal slave of Sultan firuz Shah Tughlaq who extended his authority over Oudh founded the sultanate of Jaunpur in 1394, he declared himself the ruler and ruled the Kingdom until 1403.Janjira came into prominence in the late 15th or early 16th century. The fortified inland of Janjira where the Africans emerged as a political force is located between Kolaba and Ratnagiri in western Maharashtra. It is situated in Konkan which includes the areas between the Western Ghats and the Indian Ocean, from Daman on the north to that of Terekhol on the Goa frontier, on the South. The descendants of immigrant Abyssinians and Arabs still found there in large numbers further speak greatly about its historicity. The Roha creek once happened to be the northern limit of Habsan, the land of Habshis or Abyssinian rulers. Their state was partitioned into two disproportionate parts by the gulf and creek of Rajpuri. The creek just deep into the interior land and at its very entrance the well-fortified island of Janjira is situated.[30] The Sachin State was a second-class state in the Bombay Presidency. Sachin, the capital of the State was about ten miles south of Surat in the province of Gujarat. The

state contained Twenty-one villages[31] scattered through the Chorasi and Jalalpur Talukas (Sub divisions of Surat). The villages were much more scattered, some being surrounded by the British territory and others by the portions of the Baroda State.[32] The state of Sachin was established by BaluMiyan in1791 who was given the title of nawab. The rulers of Sachin entered into matrimonial alliances with the other princely states of Gujarat such as Cambay and Janjira. In 1948 the Nawab of Sachin signed an agreement which resulted in its merger with Bombay state.

Siddis : Their Role, Place and Nature of Assimilation in the Parts of Gujarat

Population and economic structure

The Sidis, Indians of African descent, are a small minority in Gujarat. Probably around ten to twelvethousand population lived in Various parts of Gujarat in which according to census 2011, 8,661(4273 Male and 4388 Female) are belongs to Schedule Tribe (ST) in six districts of Saurashtra region since 1956. The total population of Siddis in 1961 were 3645. This Shows the substantial growth in population and social security through different governmental plans after 1956.

Siddis population in Saurashtra region (1961)[33]

District	Male	Female	Total
Gujarat State	1818	1827	3645
Surendranagar	10	17	27
Rajkot	186	194	380
Jamnagar	250	320	570
Junagadh	1236	1170	2406
Amreli	94	93	187
Bhavnagar	42	33	75

Siddis population in Saurashtra region (2011)[34]

District	Male	Female	Total
Gujarat State	4273	4388	8611
Surendranagar	28	15	43
Rajkot	313	336	649
Jamnagar	430	432	862
Junagadh	3,243	3,329	6572
Amreli	175	164	339
Bhavnagar	84	112	196

ST status brings various benefits in forms of financial assistance, and particularly reserved places for educational institutions and government jobs. Along with four other tribal groups, these Sidis have since 1982 been further accorded the status of 'Primitive' group, which entitles them to additional financial assistance

from the government. For the Sidis living elsewhere in Gujarat, an important issue has been their wish to be recognised as ST like the Sidis of Saurashtra, if not as 'Primitive' group too, and there as yet unsuccessful struggles to obtain this status. A good number of Siddis live in Ahmedabad, Surat and Baruch as well; in fact, there is a settlement of Siddis in Ahmedabad city itself; but they are not treated as a Scheduled Tribe in this area. Siddis outside Saurashtra are classified as one of the Other Backward Classes.

State primary census abstract for individual Scheduled Tribe 2011 in Gujarat: Siddis[35]

S. No.	ITEM	SEX	Siddi		
			TOTAL	Rural	Urban
1	Number of households with atleast one ST member		1726	934	792
2	Scheduled Tribes population (including institutional and houseless population)	P	8661	4679	3982
		M	4273	2343	1930
		F	4388	2336	2052
3	Scheduled Tribes population in age group 0-6	P	1187	662	525
		M	593	330	263
		F	594	332	262
4	Literates	P	5400	2753	2647
		M	2920	1536	1384
		F	2480	1217	1263
5	Total Workers	P	3374	2075	1299
		M	2426	1323	1103
		F	948	752	196
6	Main Workers	P	2862	1640	1222
		M	2274	1223	1051
		F	588	417	171
(i)	Cultivators	P	97	83	14
		M	80	67	13
		F	17	16	1
(ii)	Agricultural labourers	P	1325	1266	59
		M	945	899	46
		F	380	367	13
(iii)	Household industry workers	P	5	1	4
		M	4	1	3
		F	1	-	1
(iv)	Other Workers	P	1435	290	1145
		M	1245	256	989

		F	190	34	156
7	Marginal Workers	P	512	435	77
		M	152	100	52
		F	360	335	25
(i)	Cultivators	P	13	12	1
		M	4	3	1
		F	9	9	-
(ii)	Agricultural labourers	P	359	356	3
		M	83	81	2
		F	276	275	1
(iii)	Household industry workers	P	4	-	4
		M	1	-	1
		F	3	-	3
(iv)	Other Workers	P	136	67	69
		M	64	16	48
		F	72	51	21
8	Non-Workers	P	5287	2604	2683
		M	1847	1020	827
		F	3440	1584	1856

The Census– 2011 explicitly points out that the Siddi population is dwelling slightly more in rural sections than in the urban areas. The occupation of the Siddis is predominantly categorized into main workers and marginal workers. The workers are further numerated as Cultivators, Agricultural laborers, Household industry workers and other miscellaneous workers. Among the main workers, a major component efficiently engages themselves as Agricultural laborers. The livelihood preference is in line with the marginal workers as well. These Agricultural laborers are often found quantitatively more in the rural segments than in the urban areas. Owing to this, their dominant population is content in the rural domain and didn't plan to migrate in the urban areas. However, their literacy rates have reached up to a level of 62.35% with more opportunity and access with the males as against the females' counterparts. Even the literate population prefers to stay in the rural areas instead of migrating towards the urban territories. The women in this community have not yet attained the literacy level as the male population. The statistics state that the Siddis are majorly working as the Main workers and not as a Marginal worker. Even being the Household industry worker is not a preferred choice by this community. Women are also denied the equity to work and here also women are found categorically less in numbers.

Social Significance

It is a matter of great social significance that notwithstanding the fact that so many outstanding personalities have arisen from among the Siddis. There are also some aristocratic families of Siddi origin, like the Jafarabad house. But they do not appear to have any social relations with the ordinary Siddis of Gujarat. They consider the latter as lower in status and tend to take wives from other Muslim aristocratic families. As a result of intermixture of blood, they differ to some extent in complexion, appearance, etc., from the other Siddis. It seems that in absence of continued social relations with the general mass of Siddis, these aristocratic families do not have much important role in the social organization and cultural orientation of the community.

Though the Siddis are mostly Muslim, religion does not appear to be the main plank for their group identity. The Muslim Siddis of Jambur call their counterparts living in other areas of Saurashtra, viz., Rajkot, Jamnagar, Bhavnagar, Gondal, Junagadh, Dhoraji, etc., as Tais. Those residing in the ten villages around Jambur are called Simali, while those brought by the Portuguese from Africa to Diu are referred to as Swahili. In fact, even now, the language spoken by the Swahili Section of the Siddis in India is reported to have similarity with Swahili language of East Africa. In contrast, the Tais and Simalis have adopted the local languages with different degrees of admixture. The language of the Tais appears to be an admixture of Gujarati and Hindi, the language of the Simali on the other hand closely approximates pure Gujarati.

Community Structure

The Siddis have their main concentration in District of Rajkot Division. They have their settlements mostly in the village of Galiawad, Surva, Jambur, SirvanNes, Rasulpara , Moruka, Sasan, Vadla, HamatiyaGir, Talala, Javantri, Vithalpur and Valadar. Most of these villages are located in and around Gir forest in Talala mahal. According to the local people, the Siddis inhabit Jambur for the last five generations. Prior to that, they were residing at old Jambur – at a distance of 3 km. from Jambur, by the side of the road, leading to Jasadhar. It is believed that at old Jambur also, the ancestors of the Siddis had lived for at least five generations. The settlement pattern of the village Madhupur, of which Jambur constitutes of part, is more or less circular. The houses of the Brahmans, Lohanas and Kunbis lie interspersed on the two sides of the road. The households of the Muslim communities like the Makrani, and Siddis are situated in the eastern sector of the village. The Siddis have permanent dwellings but the structures of the same cannot be said to be pucca. The floors are mostly kutcha and plastered with mud. The roofs are generally very low and the interiors of the houses are dark. An average house is a single room tenement. The cattle are tethered inside the house, as in the forest area there is a constant danger from lions, cheetahs and leopards. As the twilight approaches, all the grazing cattle are herded

together and bounded inside the house. The houses of Siddis living in larger towns are sometime slightly better and, in some cases, built of bricks and mortar.[36]

Characteristics, Contributions and Contradictions

Since the early medieval era, Africans who came with Persians, Turks, and Arabs have contributed to the socio-cultural landscape of India. In particular, the Siddis have carried their musical traditions with them. Today Siddi Goma groups perform in India and abroad. They play sacred music and dance as wandering fakirs, singing to the Siddi saint, BavaGor. They perform dhamal, which they call goma, a word that has its etymon in the Swahili word ngoma, which means "drum." The most significant African retention is the malunga, a braced musical bow, which is found in many African communities. Siddi servants performed ngoma dances with drums, rattles, and shells on birthdays and weddings in the noble courts. Siddis wearing animal skins and headgear of peacock feathers or other bird feathers, and with painted bodies, perform a sacred traditional dance to the rhythm of the dhamal (small drum), madido (big drum), mugarman (footed drum), Mai Mishra (coconut rattle), nafir (conch trumpet), malunga and other musical instruments. BavaGor'surs (the death of a Muslim saint) is celebrated over several days and is an occasion for playing dhamal music and dancing. Ideas and practices related to the cult of BavaGor rather point to a lively interplay of given conditions and creative interpretations by the Siddi. The way Indian society offers, for the integration of foreigners carrying the stigma of black skin are manipulated and turned into its opposite, into a positively evaluated ideal of heat, clowning and madness implying a rejection of the ascription of social inferiority. This is achieved by infusing culturally predefined categories with parochial meanings. As a result, the Siddi have created their own social universe which is, however, deeply embedded in the society of Gujarat where they live. Helene Basu observes, "The shrine had provided dispersed African slaves with a material base for subsistence which helped to form a Siddi fakir organization referred to as a Sufi path (tariqa). The dargah of Gori Pir began to attract Siddi from all over the region, often individuals, slaves or servants who had fled from their masters. Through Siddi agency, the shrine was turned into a place of freedom for formerly enslaved Siddi and those who were tied to a master as servant. Many individual Africans, free or formerly enslaved, are remembered by older Sidi to have found their way to the shrine where they joined the existing fakir order of the Sidi."[37]

Both Siddi and non-Siddi Indians and Pakistanis come to these shrines to celebrate life, to mark important holidays, and to seek both individual and communal healing. These rituals clearly use techniques, materials, and other cultural elements that are present in other South Asian shrine activities, but they do so in a way that constructs and invokes the special spiritual authority of Siddis to perform them. Faqirs, like other Sufi masters, are known to be able to "work" the saints, meaning that they can call upon their presence to divine the truth or heal the body. Since Gori

Pir is seen as cool, self-controlled, and truthful, he is invoked during a ritual in which the shine is turned into a court of law. "Divination through ordeal" involves bringing a person accused of a crime, often someone suspected of engaging in adultery, witchcraft, or workplace.[38]

Way of Life and Processes of Intermingle

The Siddis are non-vegetarian. Their clans are known as Morewana, Parmar. Mori, Bagia, Sirwan, Valia, Mosangra, Chovert, Darjada, Rayeka, Nobi etc. The sakhas are exogamous in nature. They settle matrimonial relations on the basis of these sakhas. Monogamy is the norm. Pre-puberty marriage was an earlier practice. But now-a-days, Siddi girls are married after attaining puberty. Remarriage of widow, widower, male divorcee and female divorcee is permissible. Majority of families among the Siddis have nuclear set up; however, extended type of families are also found among them. Of late, it has been noticed; that the extended family system is on decline. Women play an active role in agricultural: operations, collection of fuel, drinking water and other economic activities. A married woman when becomes pregnant for the first time, a pre-delivery ritual of lap filling is, observed during the seventh month of the pregnancy at her husband's house. This is known as kholobharo. They observe chhatti ceremony on the sixth day after birth. Phuphi (father's sister) names the child.

Marriage is preceded by mangni (betrothal ceremony). Three to four days before marriage, pithi ceremony is observed in which both the bride and. the groom is anointed with paste of turmeric powder and ground nut oil. The women folk sing marriage songs on this occasion. The Siddi bury their dead. Food is not prepared in the house, of the deceased till the day of ziarat on the- third day. All the relatives and friends attend this ceremony and are treated with a feast. They also observe dasma, bisma, trisma and chelem on tenth, twentieth, thirtieth and fortieth days respectively. The Siddis belong to the Sunni sect of Islam. They do not have any family deity or village deities. During the time of crisis, they visit dargha (tomb of pir). The Siddi have folk tales and folk songs about their origin and migration. These folk songs are sung at the time of 'Dhamal dance (traditional folk dance) which is extremely popular in Saurashtra. The attitude of the Siddis towards formal education is favorable for boys but it is not favorable for girls. Boys study up to secondary level and the girls up to primary level. Boys, drop-out from studies due to economic reasons. In case of girls, it is due to both social as well as economic reasons. They avail of both modern and traditional Medicare facilities. The attitude towards family planning programme is favorable. They prefer to have at least three children. Some of the Siddis have been benefited from the rural development program for the development of agriculture. Firewood, cow dung cakes are their main fuel resources. Their attitude towards saving has been found to be favorable but a large section is still dependent on money lenders.[39]

Siddis in Ahmedabad

Once 5000 to now 500 siddis are the story of this city, Occupations and income-generating activities, such as driver, mechanic, security guard/watchman, computer trainer, computer engineer, musician, dancer, boxer, meat shop owner, shoe shop sales assistant, street hawker, PattharKuwa, Kahunpur, Sarkhej, Gomtipur and Sardamagar are the arears where we find siddis in Ahmedabad. Pattharkuwa is the largest amongst all, there are 30 cluster of households. Siddis in Ahmedabad are aware that Sidis have been in the city for a very long time: they say six or seven hundred years. They say that all the Sidis now in PattharKuwa have come from various other parts of Gujarat: 'everyone staying here has come from outside'. Unlike Sidis of Saurasthra, who speak Gujarati as their mother tongue, Sidis in PattharKuwa say they speak Hindi in their homes. Apart from the BavaGorchhilla, dargah of Siddi Sultan, who was an army chief, dargah of Sidi Bashir, Siddi and SaiyadMasjid, or SiddiSaiyad's darga, are important historical identities. SiddiSaiyad was responsible for building this mosque in Ahmedabad, which is world-famous for the unique artwork of its perforated window screens or jali of carved sandstone. One of these jali screens is almost like a symbol of the city of Ahmedabad.[40]

Approaches and Adaptions

India is a relatively liberal society which absorbed foreigners into its midst. Africans were not exceptions in this regard. They intermingled with the local people in every aspect, through the ages. Inter-marriage, no doubt, accounts for the fact of their racial and cultural identity being blurred over the centuries. Compared to other world societies in Indian society the stigma of racial inferiority suffered by the Africans is absolutely less. So, we should see few incidents such as what happened in Gir Somnath district in different perspective. Change ison the way to this community but need more acceleration. A recent constitutional amendment (2019) stated that along with the existing "Siddi" community of north Kannada district, "Siddi" community of Dharwad and Belagavi districts is included in the Scheduled Tribes. In the given circumstances we need a political will power to include every siddi population in theschedule tribe list to uplift their Economic status. But other side Siddis in Gujarat worried about the community future as Most Siddis are barely educated and live on the margins of society despite special tribal status. "What I want for them are good jobs. We managed to open a school here five years ago. I want a hospital here and a college. I want to develop Jambur into a city like Ahmedabad," this is the aspiration of common people of siddi village Jambur. We can exercise their potential through deploying them in armies because that is in their jean. We can utilize them in sports which were started through SAG IN 1988 but were abruptly stopped. In the last I would like to conclude with the views expressed by Prof.Jayanti K.Patel “The illiteracy and poverty must be eradicated of their wellbeing and existence as human beings. Percolation of political consciousness amongst them may motivate them to be a part of Democratic society. But as a humanist I value their

dignity as human beings. Why concern is not confined merely to the intellectual and academic realm, but it also emanates from my basic faith in the humanistic and egalitarian socio-cultural and economic order. I'm not interested in preserving them in museum piece or a freak in the social history of the nation. This is required a change in attitude, accepting them on the basis of equality, respecting their rights and giving recognition to their cultural existence as well as their own desire to assert their dignity. This can be achieved through the cultivation of national and scientific approaches along with respect for human dignity. And this is not impossible in the social life of Gujarat because it has a tradition of tolerance and assimilation with other cultures and people".[41] We hope that United Nations' International Decade for People of African Descent (2015-2024) gives better prospect to elevate the Siddis, revive its overlooked past and get expected reception to the Siddi people.

Endnotes:

[1]Banaji, D.R. (1932). *Bombay and the Siddis.* Bombay: Macmillan.

[2] Pankhurst, R. (1961). An introduction to *Economic history of Ethiopia from earliest time to 1800*. London:Lalibela house.

[3]Shyam, R. (1967). *Life and times of Malik Ambar*. Delhi: Munshiram Manoharlal.

[4]Tamaskar, B. G. (1978). *The Life and Work of Malik Ambar* . Delhi: Idarah-i Adabiyat-i Delli.

[5]Patel, G.D. (1971). *State Gazetteer of India*. Kutch District: Ahmedabad.

[6] Alpers, E. A. (1976). Gujarat and the Trade of East Africa, c. 1500-1800. *The International Journal of African Historical Studies*, 9(1).pp. 22-44.

[7]Pescatello, A. M. (1977). The African Presence in Portuguese India. *Journal of Asian History*, 11(1). pp. 26-48.

[8]Khalidi, O. (1989). African Diaspora in India: The Case of the Habashis of the Dakan. *Islamic culture*. 63(1-2). pp. 85-107.

[9] Gupta, A. (1991). *Minorities on India's west coast: History & society*. New Delhi: Kalinga publication.

[10] Chauhan, R. R. (1995). *Africans in India: from slavery to royalty*. New Delhi: Asian Publication Services.

[11] Ali, S. S. (1996). *The African Dispersal in the Deccan: From Medieval to Modern Times*.New Delhi: Orient Longman.

[12] Baptiste, F. (1998). The African Presence in India: A Preliminary Investigation. *Africa Quarterly*, 38(1).

[13] Catlin-Jairazbhoy, A.& Alpers, E. A. (Eds.). (2004). *Sidis and scholars: essays on African Indians*. Nodia:Rainbow Publishers.

[14] Robbins, K. X. & McLeod, J. (2006). *African Elites in India: Habshi Amarat*. Ahmedbad: Mapin Publishing.

[15] Jayasuriya, S. D. S.& Pankhurst, R. (Eds.). (2003). *The African Diaspora in the Indian Ocean*.Trenton NJ: Africa World Press.

[16] Hiremath, G. M. (1993). *Economics of Production and Marketing of Lime in Bijapur District*. Karnataka (Doctoral Dissertation, University of Agricultural Sciences, Dharwad).

[17]Micklem, J.(2001).*Sidis in Gujarat*. Edinburgh: University of Edinburgh, Centre of African Studies.

[18]Karmwar, M. (2010). African diaspora in India. *Diaspora Studies*, 3(1), 69-91.

[19]Bhatt, P. M. (2017). *The African Diaspora in India: Assimilation, Change and Cultural Survivals*. London:Taylor & Francis.

[20] Karmwar, M. (2012). India's relations with East Africa: a historical study. *Indian Journal of African Studies*, 18(1-2), pp.39-57.

[21]S. A. Weber. (1998). Out of Africa: the initial impact of millets in South Asia. *Current Anthropology* 39(2), pp. 267-274.

[22]Knappert, Jan.(1985). The Indian Ocean before 1500'in Indian Ocean Newsletter, *International Centre for Indian Ocean Research*:Bentley, Western Australia,6(2). p.11.

[23] Bruce, J., Thunberg, C. P.& Hearne, S. (1790). *Travels to discover the source of the Nile, In the Years 1768, 1769, 1770, 1771, 1772, and 1773. Vol. II*. Edinburgh: Printed by J. Ruthven, For G. G. J. And J. Robinson, Paternoster-Row, London.pp. 372-373.

[24] Pankhurst, R. (1961). *An introduction to the economic history of Ethiopia, from early times to 1800*. London.Lalibela House. p.22.

[25]D'Monte, D. (2005, September 09). African in India. *Frontline*.pp. 51-54.

[26] Pearson, M. N. (1976). *Merchants and Rulers in Gujarat: The Response to the Portuguese in the Sixteenth Century*. California: University of California Press.p.26.

[27]Basu, H. (2001). Africans in India-Past and Present. *Internationales Asienforum*, 32(3-4). pp.260-261.

[28]Beachey, R. W. (1976). *The slave trade of eastern Africa (Vol. 1*). *London:Barnes & Noble*.pp.56,59.

[29] Catlin-Jairazbhoy, A.& Alpers, E. A. (eds.). (2004). *Sidis and scholars: essays on African Indians*. Nodia:Rainbow Publishers.p.28.

[30] Gazetteer of Bombay Presidency.1833. Vol.11*Kolaba and Janjira.* Bombay: Government Central Place.pp.430-31.

[31]*They were Sachin, Kansad ,Lajpore Bhatia Taraj, Ravla,Bonand, Un , Udhana , Godadara, Dakhanwara, Saroli, Puna, Sarsana, Bhimpore, Dumas, Gaviyar, Vasana, Katha, Vedchha.*

[32]Gazetteer of Bombay Presidency.1833. Vol.6.*Rewa Kantha, Narukot, Cambay, and Surat States.* Bombay: Government Central Place.p258.

[33] Census of India Vol.5, part 4B, No.1, 1961.Siddi-A Negroid tribe of India. Ethnographic series, Gujarat. (Self Comparision).

[34]Chandramouli, C., & General, R. (2011). *Census of India 2011. Provisional Population Totals*. New Delhi: Government of India.pp.409-413.

[35]Chandramouli, C., & General, R. (2011). *Census of India 2011. Provisional Population Totals*. New Delhi: Government of India (A – 11): State Primary Census Abstract For Individual Scheduled Tribe – 2011, Gujarat,Siddis.p.13.

[36]Census of India Vol.5, part 4B, No.1, 1961.*Siddi-A Negroid tribe of India. Ethnographic series*, Gujarat.p7.

[37]Basu, H. (2004). Redefining boundaries: Twenty years at the shrine of Gori Pir.in Catlin-Jairazbhoy, A.& Alpers, E. A. (eds.).*Sidis and Scholars: Essays on African Indians*. Nodia: Rainbow publication. p.63.

[38] Curtis IV, E. E. (2014). *The Call of Bilal: Islam in the African Diaspora*.USA: UNC Press Books.p.96.

[39] Institute, T. R. (2020, April 16). *Brief Details of Siddi*. Ahemadabad , Gujarat, India.p.1.

[40]Micklem, J. (2001)*Sidis in Gujarat*. Edinburgh:University of Edinburgh, Centre of African Studies.pp.41-48.

[41] Patel, J. (2004). Siddis of Gujarat and the quest for human dignity: A concluding note.in Catlin-Jairazbhoy, A.& Alpers, E. A. (eds.). *Sidis and scholars: Essays on African Indians*.p. 214.

NOTES FOR AUTHORS,

The Equanimist…A peer reviewed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to **theequanimist@gmail.com**

Some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within three months. As a general rule, **The Equanimist** operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5 or double), an

abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list,

and a word count on the front page (include all elements in the word count).

Regular articles are restricted to an absolute maximum of 10,000 words, including all elements (title

page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, **The Equanimist** publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) abstract

(c) main text

(d) list of references

(e) biographical statement(s)

(f) tables and figures in separate documents

(g) notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts. against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5 or double.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

The Equanimist is a Bilingual Journal,i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.For UK spelling we use -ize [standardize, normalize] but -yse [analyse, paralyse]. For US spelling,-ize/-yze are the standard [civilize/analyze]. Note also that with US standard we use the serial comma (red, white, and blue). We encourage gender-neutral language wherever possible. Numbers higher than ten should be expressed as figures (e.g. five, eight, ten, but 21, 99, 100); the % sign is used rather than the word 'percent' (0.3%, 3%, 30%).Underlining (for italics) should be used sparingly. Commonly used non-English expressions, like ad hoc and raison d'être, should not be italicized.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200–300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the

actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be

written in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order to increase the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table.Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure.Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference

11. Biographical statement

The biosketch in **The Equanimist** appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.

THE Equanimist
A peer reviewed journal

SUBSCRIPTION ORDER FORM

1. NAME……..……...
2. ADDRESS……..
   ……..……
   ……..……
   TEL…..…..…….…..…..MOB……..……..…EMAIL……..
3. TYPE OF SUBSRIPTION: TICK ONE INDIVIDUAL/INSTITUTION
4. PERIOD OF SUBSCRIPTION: ANNUAL/FIVE YEARS
5. DD…….…….....…DATE……..……..……..
   BANK……..……..
   AMOUNT (IN WORD)…….....….AMOUNT (IN NUMBERS)……..……

DEAR CHIEF EDITOR,

KINDLY ACNOWLEDGE THE RECIPT OF MY SUBSCIPTION AND START SENDING THE ISSUE(S) AT FOLLOWING ADDRESS:

……
……
……

THE SUBSRIPTION RATES ARE AS FOLLOWS W.E.F. 01.04.2015

INDIA (RS.)

TYPE	INDIVIDUAL	INSTITUTION
ANNUAL	RS. 1000	RS. 1400
FIVE YEARS	RS. 4500	RS. 6500
LIFETIME	Rs. 18,000	Rs. 20,000

YOURS SINCERELY
SIGNATURE
NAME:
PLACE:
DATE:

Please Fill This Form and deposit the money through net banking. Details are BANK- STATE BANK OF INDIA Name SHREE KANT JAISWAL A/C – 32172975280.IFSC –SBIN0003717 Branch: SINDHORA BAZAR VARANASI. After depositing the money please e-mail the form and receipt at theequanimist@gmail.com

Published By
Oriental Human Development Institute
121/3B1 Mahaveerpuri, Shivkuti Road.
Allahabad-211004